गिरिजाकुमार माथुर

और

उनका काव्य

(श्री गिरिजाकुमार माथुर के काव्यकृतित्व का सांगोपांग समीक्षात्मक अध्ययन)

लेखक

डॉ० दुर्गाशंकर मिश्र

एम. ए., पी-एच. डी., साहित्यरत्न

अध्यक्ष—हिन्दी विभाग

पो. डब्ल्यू. एस. कला और वाणिज्य महाविद्यालय

कामठी रोड; नागपुर-४

प्रकाशक

हिन्दी साहित्य भण्डार

५५, चौपटियाँ रोड,

लखनऊ-३

लेखक की कुछ अन्य उल्लेखनीय कृतियाँ

क्रम		प्रथम संस्करण	मूल्य
१.	हिन्दी कवियों की काव्य साधना	सन् १९५२	चार रुपये
२.	विचार वीथिका	,, १९५४	सात रुपये
३.	अनुभूति और अध्ययन	,, १९५४	सात रुपये
४.	सेनापति और उनका काव्य	,, १९५६	सात रुपये
५.	चिन्तन-मनन	,, १९५७	सात रुपये
६.	कहानी कला की आधार शिलाएँ	,, १९५८	सात रुपये
७.	भक्ति काव्य के मूल स्रोत	,, १९५८	नौ रुपये
८.	रसखान का अमर काव्य	,, १९५९	तीन रुपये
९.	हिन्दी कविता : कुछ विचार	,, १९५९	बारह रुपये
१०.	पद्माभरण	,, १९५९	दो रुपये
११.	रस सिद्धांत और कहानी कला	,, १९६०	दो रु० पचहत्तर पैसे
१२.	हिन्दी-काव्य मंथन	,, १९६१	पन्द्रह रुपये
१३.	साहित्य साधना के सोपान	,, १९६१	सत्रह रुपये
१४.	भारतीय शिक्षा का इतिहास	,, १९६२	छः रुपये पचास पैसे
१५.	प्रसाद की काव्य प्रतिभा	,, १९६६	दस रुपये पचास पैसे
१६.	मूल्यांकन और निरूपण	,, १९६७	दस रुपये
१७.	मनन और मंतव्य	,, १९६८	पंद्रह रुपये
१८.	अज्ञेय का काव्य : एक विश्लेषण	,, १९७१	दस रुपये
१९.	साहित्यिक निबन्ध	,, १९७२	बीस रु० पचास पैसे
२०.	महाकवि निराला का काव्य : एक विश्लेषण	,, १९७३	दस रुपये
२१.	गिरिजाकुमार माथुर और उनका काव्य	,, १९७४	बीस रुपये
२२.	आचार्य रामचन्द्र शुक्ल और उनकी कृतियाँ	,, १९७५	पंद्रह रुपये
२३.	अज्ञेय का उपन्यास-साहित्य	,, (यंत्रस्थ)	पचास रुपये
२४.	सियाराम शरण गुप्त की काव्य साधना		बीस रुपये

प्रकाशक : हिन्दी साहित्य भण्डार (फोन 82508)
सरायमाली खाँ, लखनऊ-३
मुद्रक विद्यामंदिर प्रेस, (फोन नं० 82663)

सुप्रसिद्ध समीक्षक, निबन्धकार, कवि एवम् उपन्यासकार

सम्माननीय

डॉ० हजारी प्रसाद जी द्विवेदी

को

सादर-सप्रेम

जिनका साहित्यिक प्रदेय युगों तक निर्विवाद रूप से अक्षय महत्व का अधिकारी रहेगा।

विषय-सूची

गिरिजाकुमार माथुर का काव्य-कृतित्व

जीवन एवं व्यक्तित्व—

वस्तुतः आधुनिक कवियों में श्री गिरिजा कुमार माथुर अपने अनूठे व्यक्तित्व के लिए विशेष रूप से प्रसिद्ध हैं और उनके सम्बन्ध में कहा भी गया है कि 'गिरिजा कुमार माथुर—इस नाम के साथ कितने ही तरह के चित्र एक साथ आँखों में घूम जाते हैं।

हँसता हुआ आकर्षक चेहरा, खनकदार अनुगूँजवाली गहरी आवाज, आँखें जो बातें करते या कविता सुनाते समय अचानक न जाने कहाँ खो जाती हैं—जैसे दूर शून्यों में से कोई अर्थ तलाश कर रही हों और फिर अचानक वहाँ से वापस आकर चमक जाती हों; जहाँ पहुँच जायें वहाँ का वातावरण खिल जाये, हल्का हो जाये, चिर युवा मन, हर सुन्दर चीज के प्रति आसक्त ठहाकेदार हँसी मानों भीतरी आनन्द को सुगन्ध की तरह बिखराकर ही जाएँगे।

उनके व्यक्तित्व में एक मिठास भरी सहजता है, छोटे से आदमी के साथ एक दम मुक्त, स्नेहयुक्त व्यवहार प्यार बाँटने की ललक है। इसीलिए वह किसी भी व्यक्ति की कठिनाई से उतने ही जुड़ जाते हैं जैसे वह कठिनाई, वह दुःख उनका ही हो, या मानों दूसरे के दुख को वे अपने में समेट लेना चाहते हों। तरह-तरह से सलाह, सुझाव, कोशिश वह करते हैं—शायद

यह वृत्ति मन में एक स्थायी आत्मसंतोष आन्तरिक आस्था से पैदा होती है। यही कारण है कि वह एक बार जिसे मन से अपना मान लेते हैं उसको हमेशा स्नेह देते रहते हैं, उसके हजार खून माफ ! बीच में वह इनका विरोध करने लगे, बुराई भी करे तब भी मन पर कोई मैल नहीं। थोड़ी देर गुस्सा कर लेंगे—फिर सब कुछ भूल जाएँगे। कोई द्वेष, ईर्ष्या नहीं, क्योंकि भीतर से खूब भरा-पूरा मन है, अनलिखी पाटी की तरह साफ—परिवार में चौतरफा प्यार और ममता से बना व्यक्तित्व।

इस व्यक्तित्व का एक और पहलू भी है, भावाकुल, तेज, प्रखर ! हार न माननेवाला भीतर ही भीतर चैलेंज स्वीकार करनेवाला—जुझारू, ईमानदार, बेझिझक, बेलाग। कहाँ क्या बात कहना है इसका ख्याल नहीं, कोई छिपाव-दुराव नहीं, दरबारी मसल्हत की भाषा नहीं जानते, अक्सर गलत समझे जाने की हद तक। स्थान, परिस्थिति, वास्तविकता या व्यक्ति का ख्याल किए बिना सहज प्रतिक्रिया वाला अपने में डूबा मन। झूठ, दंभ, आतंक और आडम्बर से विद्रोह उनकी सामाजिक, ऐतिहासिक चेतना में सहज व्यक्त हुआ है।'

इस अनूठे व्यक्तित्व से युक्त कवि श्री गिरिजा कुमार माथुर का जन्म भाद्रपद कृष्ण द्वादशी, शुक्रवार, सं० १९७६ वि० अर्थात् २२ अगस्त, १९१९ को अशोक नगर (मध्य प्रदेश) में हुआ। आज यह अशोक नगर मध्य प्रदेश की सम्पन्न मंडी है पर यह किसी समय बहुत ही छोटा कस्बा था और मालवा एवं बुन्देलखंड की विंध्य सीमा पर बसे पुराने ग्वालियर राज्य में पछार नाम से प्रसिद्ध था। इसमें कोई सन्देह नहीं कि माथुर जी को कवि हृदय प्रदान करने में उनकी जन्मभूमि और वहाँ के वातावरण का पर्याप्त प्रभाव पड़ा है तथा उनकी जन्मभूमि का परिचय देते हुए कहा जाता है 'लाल पठार, काली सोंधी मिट्टी के खेत, खजूरों छाए हुए छोटे नदी-नाले, ढाक के जंगल जो बसन्त में दूर तक लाल-श्याम फूल उठते घास ढके गुलाईदार टीले और साँवली पहाड़ियाँ, ज्यादातर कच्चे खपरैलों के मामूली आदमियों के घर, अँधेरे गलियारे, बीच-बीच में सफेद छींटों की तरह इक्के-दुक्के चनखारी चूने

के मकान-ग्रामीण सम्पन्नता के प्रतीक—तलैया, मंदिर, मढ़िया, छतरी मजार, जिन्नों के चबूतरे—नल दमयन्ती, गर्दभिल्ल (गंधर्वसेन), विक्रमादित्य, भर्तृहरि, मोरध्वज, बैताल, बुन्देला कुँवर हरदौल, बीजासनी भवानी की किवदंतियाँ, लोकगाथाएँ, इतिहास ग्रंथ—ऐसे वातावरण में, कच्ची मिट्टी के घर में इस बालक का जन्म हुआ।'

माथुर जी के पिता तीन भाई थे पर तमाम बहिनों के मध्य जन्मे एकमात्र पुत्र होने के कारण गिरिजा कुमार जी को अत्यधिक लाड़-प्यार मिला लेकिन बराबरी की अंतरंग भावना वाली मैत्री का अभाव उनके मन में अकेली तल्लीनता को घनीभूत करने लगा। अतएव कवि-मानस में यह द्वन्द्व हमेशा चलता रहता था कि क्या यह स्नेह उसका वास्तविक अधिकार है और शनैः-शनैः यह द्वन्द्व उनके स्वभाव का अंग ही हो गया। यहाँ यह भी स्मरणीय है कि माथुर जी की माँ उनके जन्म के बाद से हमेशा अस्वस्थ रहीं और बालक गिरिजाकुमार माता की ममतामयी ऊष्मा से वंचित ही रहा तथा दुःख, सहनशीलता एवं एकाकीपन के संस्कार कवि-मानस के शनैः-शनैः अंग से बन गये। कवि माथुर की एक कविता की निम्नलिखित पंक्तियों में उनकी मनःस्थिति की छाया देखी जा सकती हैं—

तुम कैसे अद्वितीय हो
ओ मेरे साधक
जो तुम्हें प्राप्त हो सकता
उसे त्यागते हो
जो निकट तुम्हारे उससे दूर भागते हो
जो मिला तुम्हें उससे विराग है अनासक्त
जो प्राप्त नहीं हो सकता
उसे माँगते हो
जो प्रिय तुमको उसके प्रति भूले रहते हो
जो खो जाता, तुम
मोती उसे मानते हो।

यद्यपि एकमात्र पुत्र होने के कारण पिता देवीचरण जी ने बालक गिरिजाकुमार का पालन-पोषण बड़ी बारीक देखरेख में किया और उन्हें ग्रामीण वातावरण में फैले प्रत्येक संकट में कौशल, युक्ति, बुद्धि एवं तर्क की सहायता से बचाकर रखने का प्रयत्न किया लेकिन गिरिजाकुमार जी अपने परिवेश से सशंकित, बेहद मर्मशील (Hypersensitive) होते चले गये। इस प्रकार 'तार्किकता और मर्मशीलता का यह अपूर्व संयोग एक सूक्ष्म जटिलता पैदा करता गया, जिसने उनके व्यक्तित्व को एक विलक्षण आयाम दिया है, जो सहज समझ में नहीं आ पाता। छोटी से छोटी घटना के प्रति तीक्ष्ण प्रतिक्रिया, जिसने उनके प्रेक्ष्य बिन्दु, (एप्रोच), भाव-बोध और अनुभूति की ताजगी को अक्षुण्ण रखा है। चेतना की ऐसी व्यापक धारा जो चारों तरफ की विपरीत स्थितियों को समेटती चलती है।'

कहा जाता है कि शैशव काल में कवि के लिए सर्वाधिक आकर्षण था रेल और ग्रामीण संध्या में गगनमंडल में डूबती जाती रेल की आवाज उनके मानस में एक प्रकार की उत्सुकता उत्पन्न करती तथा रेल को गाँव से होकर जाते देख वह निर्निमेष देखते रह जाते। पुत्र की इस रुचि के कारण पिता ने उसे लकड़ी की एक रेल बनवा दी थी और बालक गिरिजाकुमार का रेल की चाल से, ध्वनि से इतना अधिक नैकट्य हो गया था कि सोने से जगने पर वह अर्धनिद्रावस्था में जब पानी माँगता था तो रेल की छक-छक को लयात्मक ढंग पर इस प्रकार दोहराता था—

अरे लबालब
अरे तलातल
अरे तलातल
अरे लबालब

और वह नेत्र बन्द किये इन पंक्तियों को तब तक दोहराता था जब तक कि उसे पानी नहीं पिला दिया जाता था।

देवीचरण जी शिक्षक थे और मिडिल स्कूल में हेडमास्टर थे। वह न केवल कवि थे बल्कि संगीत में भी रुचि रखते थे। उन्होंने ब्रजभाषा में

काव्यरचना की थी और 'तत्वज्ञान' नामक उनकी कविताओं का एक संग्रह अलीगढ़ से प्रकाशित भी हुआ था। साथ ही घर में उन्होंने सरस्वती की फाइलें, संस्कृत नाटक, महाभारत और उपनिषद आदि ग्रंथों का भण्डार भी एकत्र कर रखा था। इसी प्रकार गिरिजाकुमार जी की माता हिंदी, संस्कृत, उर्दू और फारसी का अध्ययन प्राप्त विदुषी थी, और कस्बे में जब बालिका मिडिल स्कूल प्रारम्भ हुआ तब उन्हें ही वहाँ प्रधान अध्यापिका बनाया गया। इस प्रकार बालक गिरिजाकुमार को पिता-माता दोनों ही की ओर से शिक्षा का वातावरण मिला और उनकी शिक्षा घर पर ही हुई तथा उन्हें छोटी अवस्था से ही अँग्रेजी के साथ उर्दू भी पढ़ाई गई।

नौ वर्ष की अवस्था में गिरिजाकुमार जी ने ब्रजभाषा के अनेक कवियों की कविताएँ कण्ठस्थ कर ली थीं और उन्हें भूषण, देव तथा पद्माकर के कवित्तों में विशेष शब्दों की गूँज और लय ने विशेष रूप से आकृष्ट किया था। साथ ही हितोपदेश का भी उन्होंने गहन अध्ययन किया और उन्हें लाला भगवानदीन की वीर पंचरत्न, देवकीनन्दन खत्री की चंद्रकांता संतति तथा अलिफ लैला की कहानियों को सुनने-पढ़ने की भी विशेष रूप से रुचि थी। यहाँ यह स्मरणीय है कि इन ऐतिहासिक पद्य कथाओं एवं इतिहास दृष्टि की छाप माथुर जी की लम्बी कविताओं में स्पष्ट रूप से दीख पड़ती है।

दस वर्ष की आयु में गिरिजाकुमार जी पहली बार सातवीं कक्षा में प्रविष्ट हुए और बारह वर्ष की अवस्था में मिडिल पास कर, आगे पढ़ाई करने वह अपनी बड़ी बहिन शारदा के पास चले गये तथा चौदह वर्ष की आयु में उन्होंने गवर्नमेंट इण्टर कालेज झाँसी से हाईस्कूल की परीक्षा उत्तीर्ण की। यहाँ यह स्मरणीय है कि 'झाँसी में उनका साक्षात्कार त्याग और बलिदान की बुन्देल गाथाओं तथा १८५७ के विद्रोह की ऐतिहासिक कथा एवं स्मारकों के साथ हुआ। दुर्धर्ष पहाड़ों, चट्टानी नदियों, घने धूसर जंगलों का वीर बुंदेल खंड, झाँसी की रानी के अपराजेय संकल्प से उद्दीप्त।'

उन दिनों झाँसी में कवित्त सवैये वाले ब्रजभाषा के कवि सम्मेलनों की धूम मची थी और हिन्दी के बहुत अच्छे छात्र गिरिजाकुमार जी को उस समय

छन्द एवं पिंगल का पर्याप्त ज्ञान हो चुका था। इस बीच सन् १९३४ के अगस्त मास में तुलसी जयन्ती के उपलक्ष्य में एक विशेष कवि सम्मेलन का आयोजन हुआ और इस कवि सम्मेलन की समस्या पूर्ति थी 'ताज है।' माथुर जी ने इस समस्या पूर्ति के चार कवित्त लिखे और वह बड़े उत्साह के साथ कवि सम्मेलन में पहुँचे पर उनके अग्रज एवं प्रेरक कवि सेवकेन्द्र के अनेक प्रयत्नों के बावजूद उन्हें कविता पढ़ने नहीं दी गयी। अतएव पहली ही कविता में गिरिजाकुमार जी को इस विडम्बना का अनुभव हुआ और उन्होंने हल्की बारिश में भीगते हुए दुःखी एवं लांछित हो मन ही मन निश्चय किया कि अब मैं ऐसी कविता लिखूँगा जिसे सबको सुनना पड़ेगा।

उक्त घटना के पश्चात् गणेशोत्सव पर कालेज में एक कवि सम्मेलन हुआ और इस बार की समस्या पूर्ति थी 'आरती' तथा पिछले कवि सम्मेलन में भाग लेने वाले बुन्देल खंड के सभी कवि इस कवि सम्मेलन में भी आये। इस कवि सम्मेलन में अपार भीड़ के समक्ष गिरिजाकुमार जी ने दो कवित्त पढ़े और उनका अंतिम कवित्त यह था—

शोभा मुखचन्द्र की अनोखी सप्रभा ललाम,
ऊषा उस छवि पर निज को थी वारती।
रूप रस पान करने को घुँघरारि लट,
मधुप समान शुभ साज काज सारती।
सुन्दर सिन्दूर भरा तेजवान मुख देख,
मलि सकुचाई अरु मौन हुई भारती।
कोटिन कलाधर की कला बलिहारी जात,
गिरिजाकुमार की उतारें सब आरती।

संपूर्ण भवन तालियों की गड़गड़ाहट से गूँज उठा और सभी प्रतिष्ठित कवियों ने इस छन्द की अत्यधिक प्रशंसा की तथा प्राचार्य ने गिरिजाकुमार जी को गले से लगा लिया। इस प्रकार एक कवित्त ने ही उनका नाम संपूर्ण बुंदेल खंड में लोकप्रिय बना दिया।

इण्टरमीडिएट में उन्होंने मैथिलीशरण, प्रसाद, निराला एवं महादेवी

का विशेष अध्ययन किया और वह महादेवी एवं प्रसाद की रचनाओं के माध्यम से खड़ी बोली के सम्पर्क में आये लेकिन छायावाद से परिचित होते हुए भी छायावाद का उन पर कोई विशेष स्थायी प्रभाव नहीं पड़ा। सन् १९३६ में इण्टरमीडिएट की परीक्षा उत्तीर्ण कर उन्होंने ग्वालियर के विक्टोरिया कालेज से सन् १९३८ में बी० ए० किया और इस अवधि में वह शेक्सपियर, ब्राउनिंग, मिल्टन और कीट्स के अध्ययन से विशेष प्रभावित हुए तथा कीट्स की 'ठोस बिम्बात्मकता' उन्हें बहुत प्रिय हुई। साथ ही उन्होंने यूरोपीय इतिहास का भी गहन अध्ययन किया।

सन् १९३७ में विक्टोरिया कालेज में एक कवि सम्मेलन श्री माखनलाल चतुर्वेदी की अध्यक्षता में हुआ और गिरिजाकुमार जी ने भी इस कवि सम्मेलन में एक कविता पढ़ी। उनकी इस कविता की सराहना करते हुए माखनलाल जी ने कहा 'यदि तुम इस गीत के आगे अपना नाम न लिखकर महादेवी जी का नाम लिख दो तो कोई पहिचान नहीं सकता।' उस समय तो माथुर जी को यह प्रशंसा अच्छी लगी पर उनके मन को यह बात कचोटती रही कि क्या वह मात्र अनुकरणकर्त्ता बन कर ही रह जायेंगे और घर लौटकर उन्होंने अपने सारे गीत फाड़ डाले तथा संकल्प किया कि जब तक वह अपनी मौलिक राह नहीं खोज लेंगे, कोई कविता नहीं लिखेंगे।

वस्तुतः किसी का पिछलगुआ होना गिरिजाकुमार जी के तेजस्वी व्यक्तित्व को सहन न हुआ और अब यहीं से प्रारम्भ हुए उनके नवीन प्रयोग, कविता में नवीन शिल्प, उपमान, भाषा एवं नवीन भावुकता की वह खोज जिसने परम्परागत कविता से पृथक् होने का एक नवीन मार्ग स्थापित कर दिया। इस प्रकार सन् १९३७ उनकी काव्य यात्रा का महत्वपूर्ण वर्ष है और इस वर्ष उन्होंने 'बिखरी स्मृतियाँ' नामक चार सौ पंक्तियों की एक लम्बी प्रेम कथा लिखी तथा 'तीसरा प्रहर' नामक एक छोटी पर ऐतिहासिक दृष्टि से महत्वपूर्ण कविता भी रची। इस कविता में छायावादी भावबोध एवं शैली शिल्प से विच्छेद का स्पष्ट संकेत मिलता है। इस बीच माथुर जी की रचनायें नियमित रूप से कर्मवीर (खंडवा) और वीणा (इन्दौर) से प्रकाशित भी होने लगी थीं।

जुलाई सन् १६३८ में गिरिजाकुमार जी लखनऊ विश्वविद्यालय के अंग्रेजी विभाग में एम० ए० के विद्यार्थी होकर आये और अगले ही महीने आल इंडिया स्टूडैंट फेडरेशन का वार्षिक उत्सव हुआ जिसमें कुमारी स्नेहप्रभा प्रधान बम्बई से अधिवेशन की अध्यक्ष बनकर आई थीं। उनके स्वागत और बिदाई के लिए गीत लिखने का भार गिरिजाकुमार जी को सौंपा गया और अपार भीड़ के सामने उन्होंने यह कविता पढ़ी—

दो क्षण ही तो मिल पाए हम,
और विदा की बेला आई।
आह! बुझा दीपक लेकर मैं,
देने आया तुम्हें विदाई।

माथुरजी ने ज्योंही उक्त पंक्तियाँ पढ़ीं कि अचानक बिजली फेल हो गयी और सम्पूर्ण पंडाल में अंधकार छा गया। स्नेहप्रभाजी ने भावाकुल स्वर में कहा 'दीपक बुझ गया' और चारों ओर तालियाँ गूंज उठीं तथा एक अज्ञात-नामा व्यक्ति एकदम से सबके बीच प्रसिद्ध हो गया। इस प्रकार कवि, प्रतिष्ठित नागरिक, प्रोफेसर और विद्यार्थी सभी के मुँह पर गिरिजाकुमार जी का नाम था।

वस्तुतः लखनऊ माथुरजी के जीवन का नवीन मोड़ था और लखनऊ में उनका प्रसिद्ध कवि निराला से घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित हुआ। सन् १६४१ में गिरिजाकुमार जी का पहला काव्य संग्रह 'मंजीर' प्रकाशित हुआ और उनकी इस कृति की भूमिका निराला जी ने लिखी। इसी वर्ष माथुर जी ने लखनऊ विश्वविद्यालय से एम० ए० 'अंग्रेजी साहित्य) और एल-एल० बी० की परीक्षायें उत्तीर्ण कीं तथा दिल्ली आये और दिल्ली में उनका विवाह हुआ। माथुर जी की सहधर्मिणी सुश्री शकुन्तला माथुर के शब्दों में 'विवाह भी कविता के माध्यम से हुआ। हिन्दू कालेज दिल्ली में आयोजित एक कवि सम्मेलन के प्रभाव स्वरूप। उसी वर्ष वे झांसी वकालत शुरू करने गये थे। कवि के पिता जी उन्हें वकील के रूप में स्वतन्त्र व्यवसाय में देखना चाहते थे। छ महीने तक झांसी में उन्होंने वकालत की ट्रेनिंग प्राप्त की, किन्तु पहली बार जब केस

आया तो कोर्ट जाने के बजाय दिल्ली चले आये। मैं उस समय दिल्ली में थी और अस्वस्थ थी। झाँसी के खँडहरों वाला तथा अकेलेपन का वातावरण उनकी क्वाँर की सूनी दुपहरी, एसोसिएशन्स, भीगा दिन, नामक कविताओं में बड़ी मार्मिकता के साथ उतारा है।'

सन् १९४२ में माथुर जी टायफाइड के बाद बेकार रहे और आजीविका के अभाववश उन्हें कठोर संघर्ष के दिन झेलने पड़े। कहा जाता है कि वह 'दिल्ली रेडियो स्टेशन पर पाँच-पाँच दस-दस रुपये के प्रोग्राम करने के लिए ३०, टेलर स्क्वायर से अंडर हिल रोड (तब का रेडियो केन्द्र) तक जाते थे।' इस प्रकार आंतरिक एवं बाह्य संघर्षों से पीड़ित गिरिजा-कुमार जी की नवम्बर १९४३ में दिल्ली रेडियो स्टेशन पर नियुक्ति हो गयी और सन् १९४३ में ही अज्ञेय द्वारा सम्पादित 'तार सप्तक' में संकलित उनकी कविताओं ने उन्हें चर्चा की उच्च शिखर पर पहुँचा दिया।

सन् १९४४ में माथुर जी का स्थानान्तर लखनऊ हो गया पर वहाँ वह सन् १९४६ तक अस्वस्थ ही रहे लेकिन अनेक परेशानियों, कठिनाइयों और संघर्षों ने उन्हें विचलित करने की अपेक्षा उद्दीप्त ही किया। इस प्रकार शारीरिक, आर्थिक एवम् मानसिक कष्टों में भी उन्होंने एशिया का जागरण, प्रौढ़ रोमान्स, शाम की धूप, पहिये और धूप का ऊन जैसी महत्व-पूर्ण रचनाएँ लिखकर हिन्दी कविता की धारा ही परिवर्तित कर दी। साथ ही सन् १९४६ में माथुर जी के दूसरे काव्य संग्रह 'नाश और निर्माण' का प्रकाशन हुआ तथा इस काव्य संकलन को प्रयोगवाद और नई कविता की समर्थ पीठिका कहा जाता है। इधर अब अधिकांश विशिष्ट पत्र-पत्रिकाओं में कवि माथुर की रचनायें प्रकाशित होकर साहित्यिक चर्चा का विषय बन चुकी थीं और उन्हें पर्याप्त ख्याति भी प्राप्त हुई थी।

सन् १९५० में गिरिजाकुमार जी की संयुक्तराष्ट्र संघ में हिन्दी-प्रसाराधिकारी के पद पर नियुक्ति हुई और वह रेडियो से त्यागपत्र देकर अमेरिका चले गये। यहाँ यह स्मरणीय है कि माथुर जी हिन्दी के सर्वप्रथम कवि-लेखक थे जिन्हें अंतर्राष्ट्रीय संस्था में इतना महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त

हुआ था और अब 'अमेरिका तथा पश्चिमी देशों में उदित टेकनोलोजी युगीन संस्कृति से उनका सीधा साक्षात्कार हुआ। मानवी मूल्यों में विघटन, औद्योगिक सभ्यता की जिन्दगी के तनाव और टकराव ने कवि के कृतित्व को एक नया मोड़ दिया। कवि में प्रभाव स्वरूप नई वैज्ञानिक चेतना उदित हुई। उस सभ्यता की सीमाओं और आदमी की ऐतिहासिक नियति को भी उन्होंने भली भाँति समझा।' इस बीच उन्होंने योरोप और इंग्लैंड की यात्रा भी की।

अमेरिका से लौटने के उपरान्त सन् १९५३ में उन्होंने पुन: रेडियो में नौकरी प्रारंभ की और उन्हें लखनऊ में उपनिदेशक नियुक्त किया गया। सन् १९५५ में उनकी कविताओं का तीसरा संकलन 'धूप के धान' प्रकाशित हुआ और सन् १९५६ में उन्होंने एक सांस्कृतिक शिष्टमंडल में नेपाल की यात्रा भी की। इसी वर्ष उन्होंने आकाशवाणी प्रतिनिधि मंडल में रूस, चैकोस्लोवाकिया और स्विट्जरलैंड की यात्रा की। तदनंतर उनका स्थानान्तर भोपाल, इलाहाबाद, दिल्ली और उड़ीसा के रेडियो स्टेशनों में होता रहा पर सन् १९६२ में उन्हें जालंधर (पंजाब) के आकाशवाणी केन्द्र में निदेशक के पद पर नियुक्त किया गया। इस बीच सन् १९५८ में उनके श्रव्यनाटकों का संग्रह 'जनम कैद' प्रकाशित हुआ और सन् १९६१ में 'शिला पंख चमकीले' नामक काव्य-कृति प्रकाशित हुई तथा इसी वर्ष उन्हें अपने नवीन प्रतीकात्मक नाट्य काव्य 'कल्पान्तर' पर चेकोस्लोवाक रेडियो के अंतर्राष्ट्रीय पुरस्कार 'LIDICE' द्वारा सम्मानित किया गया। वस्तुत: 'कल्पान्तर' सन् १९५७ की सामग्री का वह आरंभिक प्रारूप है जिसे बाद में कवि ने 'पृथ्वी कल्प' नामक नाट्य में विकसित किया।

सन् १९६६ में माथुर जी के समीक्षात्मक निबन्धों का संकलन 'नयी कविता : सीमाएँ और संभावनाएँ' प्रकाशित हुआ। इस ग्रंथ में नयी कविता की विभिन्न प्रवृत्तियों का नितान्त नवीन अध्ययन प्रस्तुत किया गया है और इसमें 'नाद सिद्धांत' नमाक वह उल्लेखनीय निबंध भी संगृहीत है जिसमें

काव्यशिल्प, ध्वनि एवं वस्तु का सर्वथा मौलिक निकर्ष प्रस्तुत किया गया है। सन् १९६७ में उन्हें दिल्ली आकाशवाणी पर 'विविध भारती' के निदेशक—संप्रति स्टाफ ट्रेनिंग, आकाशवाणी के निदेशक—पद पर नियुक्त किया गया और सन् १९६८ में उनका पाँचवाँ काव्य संकलन 'जो बँध नहीं सका' प्रकाशित हुआ। इस प्रकार माथुर जी की लेखनी सर्वदा गतिशील रही है और उनका कवि व्यक्तित्व निरंतर विकासशील एवं वर्धमान ही है।

काव्य-साधना के विविध सोपान

इसमें कोई संदेह नहीं कि 'श्री गिरिजाकुमार माथुर नये युग की हिंदी कविता के एक समर्थ व्यक्तित्व हैं' और डॉ० नगेन्द्र का तो स्पष्ट रूप से यही मत है 'कविता गिरिजाकुमार का शगल नहीं है, वह उनका स्वभाव है। इसलिए वह निरंतर लिखते हैं।' इस प्रकार श्री गिरिजाकुमार माथुर को सहज स्वाभाविक कवि मानना ही उचित जान पड़ता है और यहाँ यह स्मरणीय है कि संस्कृत साहित्य के प्रसिद्ध प्राचीन विद्वान राजशेखर ने प्रतिभा भेद के अनुसार कवि के सारस्वत, आभ्यासिक या औपदेशिक नामक तीन प्रकार मानते हुए श्यामदेव का यह मत उद्धृत किया है कि सारस्वत कवि इन तीनों में मूर्धन्य होता है क्योंकि वह अपने विषय में स्वतंत्र रहता है—

> 'तेषां पूर्वः पूर्वः श्रेयान्' इति श्यामदेवा। यतः
> सारस्वतः स्वतंत्र स्याद् भवेदाभ्यासिको मितः।
> उपदेशकविस्त्वत्र वल्गु फल्गु च जल्पतिः॥

इस प्रकार गिरिजाकुमार जी को सारस्वत कवि समझना ही युक्तिसंगत होगा, क्योंकि उनकी काव्य-साधना अभ्यासजन्य न होकर सहज स्वाभाविक ही है और उनके जीवनवृत्त का अनुशीलन करने पर स्पष्ट हो जाता है कि शैशवावस्था से ही उनकी प्रवृत्ति काव्य सृजन की ओर रही है। उनके पिता श्री देवीचरण जी भी ब्रजभाषा में काव्यरचना करते थे और सन् १९०४ में उनकी दार्शनिक कविताओं का एक संग्रह 'तत्वज्ञान' अलीगढ़

से प्रकाशित भी हुआ। स्वयं गिरिजाकुमार जी ने नौ वर्ष की अवस्था में होज ब्रभाषा के बहुत से कवियों की कविताएँ कंठस्थ कर ली थीं और वह समस्यापूर्ति की ओर आकृष्ट भी हुए थे तथा केवल पन्द्रह वर्ष की अवस्था में ही कवि सम्मेलनों में भाग लेकर वह अपनी कविताएँ सुनाने लग गये थे। इस प्रकार केवल पन्द्रह वर्ष की अवस्था में अपार भीड़ के समक्ष अपनी कविताएँ पढ़ना न केवल कवि माथुर की निर्भीकता का परिचायक है अपितु उन्हें सहज स्वाभाविक कवि सिद्ध करने का सबल प्रमाण भी है। इतना ही नहीं जब वह कालेज में पढ़ रहे थे तब उन्होंने विक्टोरिया कालेज, ग्वालियर के एक कवि सम्मेलन में जो कविता पढ़ी उसे सुनकर कवि-सम्मेलन के अध्यक्ष सुप्रसिद्ध कवि श्री माखनलाल चतुर्वेदी ने यही मत प्रकट किया था कि 'यदि तुम इस गीत के आगे अपना नाम न लिखकर महादेवी जी का नाम लिख दो तो कोई पहिचान नहीं सकता।'

भले ही कवि माथुर को यह सराहना उचित न प्रतीत हुई हो और उन्होंने अब अपनी सभी कविताओं को नष्ट कर यह दृढ़ निश्चय किया हो कि वह जब तक अपनी मौलिक राह नहीं खोज लेंगे तब तक कोई कविता न लिखेंगे पर उक्त प्रशंसा श्री गिरिजाकुमार माथुर को सारस्वत कवि अवश्य सिद्ध करती है। यहाँ यह भी ध्यान में रखना होगा कि माथुर जी ने जो निश्चय किया उसका पालन भी पूर्ण मनोयोग के साथ किया और अब 'यहीं से आरंभ हुए उनके नये प्रयोग, कविता में नये शिल्प, उपमान, भाषा, नई, भाववस्तु की यह खोज जिसने परम्परागत कविता से अलग होने का एक नया मार्ग स्थापित कर दिया।' इस प्रकार सन् १९३७ को माथुर जी की काव्य यात्रा का महत्वपूर्ण वर्ष कहा जाता है और सन् १९३७ के आरंभ में उन्होंने 'बिखरी स्मृतियाँ' नाम से चार सौ पंक्तियों की एक लम्बी प्रेमकथा लिखी, जिसके कुछ अंश पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित भी हुए। यहाँ यह स्मरणीय है कि इस बीच गिरिजाकुमार जी की रचनाएँ नियमित रूप से कर्मवीर (खंडवा) और वीणा (इन्दौर) में प्रकाशित होने लगी थीं तथा इस अवधि में लिखी गयी उनकी नारी, विजय, महायुद्ध और सात सागर का महाविष आदि कविताएँ कवि माथुर की उन श्रेष्ठ

कविताओं में से हैं जिनमें उन्होंने एक क्रांतिद्रष्टा के रूप में नवजीवन का स्वप्न देखा है। सन् १९३७ में ही माथुर जी ने 'तीसरा प्रहर' नामक एक छोटी पर ऐतिहासिक दृष्टि से महत्वपूर्ण कविता लिखी और इसमें उन्होंने छायावादी वायवीयता एवं आध्यात्म से पृथक् होकर यथार्थ के नवीन धरातल पर ऐतिहासिकता और सहज मानवीयता को अपनी कृति का माध्यम बनाया है। इस प्रकार 'तीसरा प्रहर' में छायावादी भावबोध एवं शैली शिल्प से विच्छेद का स्पष्ट संकेत मिलता है और कवि का सत्य की ओर निस्संदेह यह एक नवीन मोड़ था—

आज मेरे स्वर बनेंगे,
सत्य के संदेशवाहक
आज मेरे गीत होंगे
जागरण की रागिनी के।

सन् १९३८ में गिरिजाकुमार जी ने लखनऊ बिश्वविद्यालय के अंग्रेजी विभाग में एम० ए० के छात्र के रूप में प्रवेश किया और यह वर्ष उनकी काव्य यात्रा का निर्विवाद रूप से महत्वपूर्ण वर्ष कहा जाता है क्योंकि इसी वर्ष विषयवस्तु एवं शिल्प में एकदम नये प्रयोग का सधारम्भ हुआ। सन् १९३७ की गर्मियों में लिखी गयी इस कविता से यह स्पष्ट हो जाता है कि कवि अब किस ओर मुड़ रहा है—

बड़ा काजल आँजा है आज,
भरी आँखों में हल्की लाज
तुम्हारे ही महलों में प्रात,
जला क्या दीपक सारी रात
निशा का सा पलकों पर चिह्न
जागती नींद नयन में प्रात
सखी ऐसा लगता है आज
रोज से जल्दी हुआ प्रभात
न पाया पूनो का चाँद,
अभी तो झूल रही है रात।

यद्यपि माथुर जी सन् १९३७ से ही नवीन प्रयोग करने लगे थे पर सन् १९३८ तक उन्हें मुक्त छन्द, प्रतीक एवम् उपमानों के प्रयोग में काफी प्रौढ़ता प्राप्त हो चुकी थी। उदाहरणार्थ ; सन् १९३८ में लिखी गयी उनकी 'प्रेम से पहले' कविता का यह अंश दर्शनीय है—

अब तो तुम्हारी सुधि,
मुझको हुई है हिमालय की लकीर सी
उस दिन की बात जब
उछले थे धीमे ही
चलने से रेती में
चंचल चुपचाप चरण
मिट ही चुके हैं वे बिखरे निशान
किंतु
संस्मृति के सूने कठोर शिला खंड पर
वज्र बन धँसे हैं वे तेरे इस्पात चिह्न
मानों पत्थर भी गल के मोम बन गया था तब
और सूख जाने पर
जैसे के तैसे निशान बन रहे प्राण।

इससे स्पष्ट हो जाता है कि कवि माथुर सन् १९३८ में अपनी काव्य यात्रा का नवीन पथ निर्माण करने में सफल रहे थे और लखनऊ तो उनके जीवन का नया मोड़ था। लखनऊ निवास में उन्होंने शेक्सपियर, कीट्स और मिल्टन आदि पाश्चात्य कवियों का गहन अध्ययन किया तथा कीट्स के बिम्बविधान शेक्सपियर की प्रभावात्मकता और मिल्टन के विशेषण विपर्यय तथा 'ग्रांड स्टाइल' की कला ने कवि माथुर को विशेष रूप से प्रभावित किया। साथ ही लखनऊ निवास में उनका महाप्राण निराला से सम्पर्क भी बढ़ा और जिस प्रकार कविता की रूढ़ियाँ तोड़ने में निराला का विश्वास था उसी प्रकार कवि माथुर ने भी काव्य परम्परा को विच्छिन्न कर नवीन प्रयोगों का पथ प्रशस्त करने का दृढ़ निश्चय किया। शनैः शनैः निराला जी

और कवि माथुर की घनिष्ठता बढ़ती गयी और सन् १६४१ में जब माथुरजी की कविताओं का पहला संग्रह 'मंजीर' प्रकाशित हुआ तब उसकी भूमिका निराला जी ने लिखी और अपनी इस भूमिका में उन्होंने एक स्थल पर श्री गिरिजाकुमार माथुर के संबंध में लिखा भी है 'युक्त प्रांत, दिल्ली और मध्यभारत के अनेक कवि सम्मेलनों, विश्वविद्यालयों, कालेजों और गोष्ठियों में उनकी वाणी की नैसर्गिकता गूंज चुकी है। कितने ही तरुण और तरुणियों के मन उनके हाथ आ चुके हैं, उनके साथ हो चुके हैं। वे सही माने में कवि और गायक हैं। मेरे घनिष्ठ मित्र हैं। मैं अपने यहाँ पार्क में, गोमती किनारे, सम्मेलनों में, गोष्ठियों में, मित्रों की बैठकों में बहुत बार उनकी तेजोमयी मधुर आवृत्ति सुन चुका हूँ।'

प्रथम काव्य संकलन 'मंजीर' के प्रकाशन के एक वर्ष पश्चात् गिरजा-कुमार टायफाइड से पीड़ित हुए और आजीविका के अभाव में उन्हें कठोर संघर्ष के दिन भी झेलने पड़े। यद्यपि नवम्बर १६४३ में उन्हें दिल्ली रेडियो-स्टेशन पर नौकरी मिल गयी और कुछ समय बाद उनका स्थानान्तरण लखनऊ हो गया पर लखनऊ में वह सन् १६४६ तक अस्वस्थ ही रहे। इस प्रकार कई वर्षों तक माथुर जी को उलझनों, कठिनाइयों और संघर्षों का सामना करना पड़ा लेकिन उनकी लेखनी ने विराम नहीं लिया और अनेक शारीरिक, आर्थिक एवम् मानसिक कष्टों में भी उन्होंने एशिया का जागरण, प्रौढ़ रोमान्स, शाम की धूप, पहिये तथा धूप का ऊन जैसी महत्वपूर्ण कवि-ताएँ लिखकर हिन्दी कविता की धारा ही परिवर्तित कर दी।

सन् १६४३ में अज्ञेय के सम्पादन में नयी चेतना की कविता के आकर ग्रंथ 'तार सप्तक' का प्रकाशन हुआ और इसमें कोई संदेह नहीं कि प्रयोगवाद एवं नई कविता का अभ्युदय 'तारसप्तक' के प्रकाशन से हुआ। डॉ० रमाशंकर तिवारी के शब्दों में 'तारसप्तक' नई कवि काव्य धारा को निर्देशित करने वाला सफल सामूहिक प्रयत्न है और नई प्रवृत्तियों को प्रतिबिंबित एवं रूपायित करने में उसका वही महत्व है जो अँग्रेजी रोमांटिक काव्य धारा के निदर्शन में वर्ड्स्वर्थ और कालरिज के द्वारा सहयोगिता के

आधार पर प्रकाशित 'लीरिकल बैलड्स' का ।' इस तार सप्तक' में श्री गिरिजाकुमार माथुर को भी स्थान प्राप्त हुआ था और इसमें उनकी आज हैं केसर रंग रँगे वन, रुक कर जाती हुई रात, चूड़ी का टुकड़ा, रेडियम की छाया, कुतुब के खँडहर, पानी भरे हुए बादल, क्वाँर की दोपहरी, भीगादिन, एशोसिएशन, विजय दशमी, अधूरा गीत तथा बुद्ध नामक बारह कविताएँ संकलित थीं और तीन पृष्ठों के वक्तव्य में कवि माथुर का सैद्धांतिक दृष्टि-कोण भी अभिव्यक्त हुआ था । इधर कवि माथुर की रचनायें विशिष्ट पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होकर साहित्यिक चर्चा का विषय बन चुकी थीं और 'तार सप्तक' के प्रकाशन के पश्चात् एक ओर तो साहित्य में प्रयोगवाद एवम् नई कविता को प्रतिष्ठा प्राप्त हुई तथा दूसरी ओर इस नूतन प्रवृत्ति के पुरस्कर्त्ताओं में माथुर जी को भी प्रसिद्धि प्राप्त हुई ।

सन् १९४६ में गिरिजाकुमार जी की स्वरचित कविताओं का दूसरा संकलन 'नाश और निर्माण' प्रकाशित हुआ तथा इसमें संकलित कविताओं में प्रगति और प्रयोग का अभूतपूर्व संयोग है । यद्यपि 'नाश और निर्माण' का यथेष्ट प्रचार नहीं हुआ पर इस काव्य संकलन ने साहित्य मर्मज्ञों का ध्यान अवश्य आकृष्ट किया और इसमें कोई संदेह नहीं कि 'यही वह स्रोत ग्रंथ है जिसकी कविताओं में प्रयोगवाद और नई कविता की समर्थ पीठिका है। नाश और निर्माण का ऐतिहासिक संदर्भ में मूल्यांकन अभी बाकी है ।' इस प्रकार नये कवियों में अब श्री गिरिजाकुमार जी माथुर को आशातीत प्रसिद्धि प्राप्त हुई और उनकी कविताएँ प्रसिद्ध पत्र-पत्रिकाओं में सम्मानपूर्वक प्रकाशित भी हुईं लेकिन उनकी कविताओं का तीसरा संकलन सन् १९५५ में ही 'धूप के धान' नाम से प्रकाशित हो सका और इस काव्य कृति की चर्चा भी बहुत अधिक हुई । इसके पश्चात् सन् १९६१ में 'शिला पंख चम-कीले' और सन् १९६८ में 'जो बँध नहीं सका' नामक दो काव्य संकलन भी उनके प्रकाशित हुए और यह तथ्य इस बात का परिचायक है कि श्री गिरिजाकुमार माथुर की काव्य साधना में कभी भी किसी गत्यवरोध के दर्शन नहीं होते तथा उन्हें आधुनिक साहित्य का एक जागरूक कलाकार समझना ही युक्तिसंगत होगा ।

कवि माथुर की काव्य-साधना के उक्त संक्षिप्त सर्वेक्षण से यह स्पष्ट हो जाता है कि उनका कवि-व्यक्तित्व निरन्तर विकासशील ही रहा है और उनके सम्बन्ध में यही मत प्रचलित है कि 'वह अपनी पीढ़ी के अन्य कवियों की भाँति एक बिन्दु पर आकर रुक नहीं गए, न अपनी ही परिपाटी से बँधकर रह गए। यही कारण है कि वे अब तक एक दम नई-नई भावभूमियों, भाषा, मुहावरे और संवेदना के अपरिचित रूपाकारों की उद्‌भावना करते रहे हैं।' इस प्रकार श्री गिरिजाकुमार माथुर के काव्य विकास को हम निम्नलिखित विभागों में विभाजित कर सकते हैं—

(१) प्रारम्भ में माथुर जी का रुझान ब्रजभाषा में समस्यापूर्ति करने की ओर रहा और छायावाद से प्रभावित हो उन्होंने खड़ी बोली में छायावादी शैली की कुछ कविताएँ भी लिखीं पर सन १९३६ में उन्होंने यह दृढ संकल्प किया कि जब तक वह अपनी मौलिक राह नहीं खोज लेंगे तब तक कोई कविता नहीं लिखेंगे। इस प्रकार सन् १९३७ में ही कवि माथुर ने कबिता में नवीन प्रयोग करना आरम्भ कर दिए और सन् १९३८ तक उन्हें मुक्त छन्द, प्रतीक एवं नवीन उपमानों के प्रयोग में पर्याप्त प्रौढ़ता प्राप्त हो चुकी थी।

(२) सन् १९४१ में कवि माथुर का प्रथम काव्य संग्रह 'मंजीर' प्रकाशित हुआ और इस काव्य संकलन में संकलित कविताओं में विभिन्न प्रवृत्तियों के दर्शन भी होते हैं पर सन् १९४३ में 'तारसप्तक' का प्रकाशन होते ही माथुर जी को प्रयोगवाद एवं नई कविता के प्रतिष्ठापकों में स्थान प्राप्त हुआ और वह अब साहित्य चर्चा के विषय भी बन गए।

(३) सन् १९४६ में कवि माथुर का दूसरा काव्य संग्रह 'नाश और निर्माण' प्रकाशित हुआ तथा इस काव्यकृति ने कवि के व्यक्तित्व को नूतन आयाम दिया। 'नाश और निर्माण' में संकलित कविताओं में प्रगति और प्रयोग का अभूतपूर्व संयोग है और इस काव्य संग्रह की कविताओं में प्रयोग वाद एवं नई कविता की समर्थ पीठिका भी है।

(४) सन् १९५५ में कवि माथुर की कविताओं का तीसरा संकलन

'धूप के धान' प्रकाशित हुआ और इस काव्यकृति को नई कविता की एक श्रेष्ठ उपलब्धि माना गया है।

(५) सन १९६१ में प्रकाशित 'शिलापंख चमकीले' नामक चौथे काव्य संग्रह और सन १९६८ में प्रकाशित 'जो बँध नहीं सका' नामक पाँचवें काव्य संकलन में कवि माथुर ने पुनः एक और नवीन भावभूमि एवं मुहावरे की खोज आरम्भ कर यह सिद्ध कर दिया कि उनका कवि व्यक्तित्व निरंतर विकासशील ही रहा है।

काव्यकृतियों का संक्षिप्त समीक्षात्मक परिचय

सामान्यतया श्री गिरिजाकुमार माथुर विविधमुखी प्रतिभा सम्पन्न साहित्यकार ही हैं और गद्य एवं पद्य दोनों पर उनका समान अधिकार रहा है तथा कविता, समीक्षा, निबन्ध एवं नाटय साहित्य आदि विविध साहित्य रूपों को उन्होंने समृद्ध भी किया है। इस प्रकार मंजीर, नाश और निर्माण, धूप के धान, शिला पंख चमकीले और जो बँध नहीं सका—नामक पांच काव्य संकलनों के साथ-साथ माथुरजी के आलोचनात्मक निबंधों का संकलन 'नई कविता : सीमाएँ और संभावनाएँ नाम से सन् १९६६ में प्रकाशित हुआ है जिसमें नवीन काव्य की विभिन्न प्रवृत्तियों का नितान्त नवीन अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। इसी प्रकार सन् १९५८ में उनके श्रव्य नाटकों का संकलन 'जनम कैद' प्रकाशित हुआ और उनके 'पृथ्वी कल्प' प्रतीकात्मक नाट्यकाव्य के एक अंश पर उन्हें चेकोस्लोवाक सरकार के प्रसार विभाग द्वारा अंतर्राष्ट्रीय पुरस्कार से सम्मानित भी किया गया। इससे स्पष्ट हो जाता है कि माथुरजी बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न साहित्यकार हैं पर उन्हें सर्वाधिक ख्याति कवि के रूप में ही प्राप्त हुई है और हमारा उद्देश्य भी यहाँ उनके काव्यकृतित्व का मूल्यांकन करना ही है। अतएव यहाँ हम श्री गिरिजाकुमार माथुर के काव्य संग्रहों का पृथक्-पृथक् परिचय देना आवश्यक समझते हैं।

मंजीर

सन् १९४१ में गिरिजाकुमार जी की कविताओं का सर्वप्रथम संग्रह 'मंजीर' प्रकाशित हुआ और इसकी भूमिका में युग प्रवर्तक कवि निरालाजी ने

यही मत प्रकट किया कि 'श्री गिरिजाकुमार माथुर निकलते ही हिन्दी की निगाह खींच लेने वाले तारे हैं। काव्य के आकाश से उनका बहुत ही मधुर और रंगीन प्रकाश हिन्दी के धरातल पर उतरा है। बोलने वाले तार की तरह मजबूत, स्वर से मिले हुए, अपने पहले ही झंकार से उन्होंने लोगों का दिल ले लिया।' यहाँ यह स्मरणीय है कि इस मंजीर 'काव्यकृति' का परिचय देते हुए 'आज के लोकप्रिय हिन्दी कवि : 'गिरिजाकुमार माथुर' में कहा गया है 'मंजीर को रचनाओं में तीन प्रवृत्तियों के दर्शन हमें होते हैं। एक तो अछूती गीतात्मकता और रंगों की योजना, दूसरी नवीन छन्द तथा रूपाकारों के प्रयोग में नये बिंबों के द्वारा आत्मीय एवं व्यक्तिगत अंतरंग अनुभूतियों की उद्भावना, तीसरी वर्णनात्मक शैली की कविताएँ, जिसमें बाह्य वास्तविकता, जीवन और जगत की समस्याओं के साथ इतिहास बोध लक्षित होता है। यह तीनों ही प्रवृत्तियाँ, जो मंजीर में बीज रूप में मौजूद हैं, आगे विकसित होती गई हैं और आज तक विद्यमान हैं।'

दूसरी ओर 'आज का लोकप्रिय हिन्दी कवि : 'गिरिजाकुमार माथुर' के प्रकाशन से लगभग छह वर्ष पूर्व रचित अपने शोध प्रबंध 'नव्य हिन्दी काव्य' में डा० शिवकुमार मिश्र ने यही कहा है कि 'मंजीर' कवि का प्रथम संग्रह है, जिसमें उसके रोमांटिक काल की प्रारम्भिक रचनाएँ संग्रहीत हैं। इन कविताओं में कवि के छायावादी और निराशा, विषाद और असफलताओं की लौकिक व स्थूल अभिव्यक्ति करने वाले उत्तर छायावादी संस्कारों को देखा जा सकता है। प्रेम और सौन्दर्य प्रधान विषय हैं—रुग्ण रोमान और क्षय की छाप उन पर गहराई से अंकित है।' साथ ही डा० कैलाश वाजपेयी का कहना है कि 'मंजीर की रचनाएँ किशोर मन के स्वप्न चित्र हैं। दर असल यह दुनिया वैसी नहीं है जैसी कि दिखाई देती है। बच्चे की दुनिया अबोध है। कार्य और कारण के बीच सम्बन्ध स्थापित करने में नितान्त असमर्थ—एक कोरी-धुली दुनिया।····मंजीर का कवि आदर्शों की सतह पर खड़ा है। भीतर की उदासी उसे गाने के लिए विवश करती है। अपनी इकहरी अनुभूतियों को हल्के-फुल्के शब्दों में एक झिलमिल सी देह प्रदान कर वह जो कुछ गुनगुनाता है, उसका एकमात्र अर्थ है प्यार। इन रचनाओं की

अभिव्यक्ति एक ताजगी की ओर संकेत करती है, जो अपनी स्वाभाविक ऋजुता के कारण पढ़ने वाले का मन अनायास अपनी ओर खींच लेती है।'

उक्त तीनों ही मत पृथक-पृथक दृष्टिकोण का परिचय देते हैं पर यदि इन तीनों का परस्पर समन्वय कर दिया जाय तो यहाँ यह कहा जा सकता है कि यह समन्वित रूप अवश्य 'मंजीर' का संक्षिप्त समीक्षात्मक परिचय देने में समर्थ रहा है। कहने का अभिप्राय यह है कि 'मंजीर' में श्री गिरिजाकुमार माथुर की प्रारम्भिक कविताएँ संकलित हैं, और सन् १९३६ से १६४० तक की अवधि के मध्य रची गयी इन कविताओं में कवि माथुर के अबोध बालक रूप के दर्शन होते हुए भी हमें विविधात्मकता के स्पष्ट दर्शन होते हैं। यहाँ यह स्मरणीय है कि प्रारम्भ में गिरिजाकुमारजी छायावादी काव्यधारा से विशेष रूप में प्रभावित थे और उनकी कुछ कविताएँ तो उन्हें छायावादी कवि ही सिद्ध करती हैं तथा उनकी एक कविता को सुनकर स्वयं श्री माखन लाल चतुर्वेदी ने उनसे कहा था 'यदि तुम इस गीत के आगे अपना नाम न लिखकर महादेवी जी का नाम लिखदो तो कोई पहिचान नहीं सकता।' इस प्रकार सन् १६३७ से पूर्व कवि माथुर ने छायावादी कवियों के ढंग की कविताएँ ही रची थीं और 'मंजीर' में संकलित उनकी 'फिर मिलन होगा वियोगिनी' तथा हृदय के स्वप्निल गगन में हँस चली तुम चाँदनी बन, नामक दो कवितायें तो निर्विवाद रूप से छायावादी ही कही जाएँगी। उदाहरणार्थ, इनमें से प्रथम कविता यहाँ उद्धृत है—

फिर मिलन होगा वियोगिनि।
नयन सुख मिल जायेंगे सब
सुमन-सुख खिल जायेंगे तब।
शशि किरण की बाँह में फिर उर गगन होगा वियोगिनि।
अधर होंगे मौन छन भर,
कह सकेंगे कौन मन भर।
उधर सुन्दर वक्ष का कंपन मधुर होगा वियोगिनि।
उन चरण पर वारने को
हृदय का धन हारने को

मलय चन्दन उन क्षणों प्रति अश्रुकन होगा वियोगिनि।

कवि माथुर के काव्य संकलन 'मंजीर' के पृष्ठ ७२ पर दी गयी इस कविता की तुलना हम महादेवी जी की प्रसिद्ध कविता 'बीन भी हूँ मैं तुम्हारी रागिनी भी हूं, से कर सक्ते हैं और इन दोनों की तुलना से सहज ही स्पष्ट हो जाता है कि कवि माथुर प्रारम्भ में छायावादी कवियों से अवश्य प्रभावित थे। इस प्रकार 'मंजीर' में संकलित कुछ कविताओं को छायावादी कहना अनुपयुक्त न होगा लेकिन यह भी पूर्ण सत्य है कि माथुरजी के इस प्रथम काव्य संग्रह में ही छन्द, लय, रूपाकार एवं भावभूमि के अनेक नवीन प्रयोग भी मिलते हैं और 'मंजीर' में प्रयोगवादी स्वर की ही प्रबलता है। 'मंजीर' के पृष्ठ ६० पर दी गयी कविता 'प्रेम से पहले' को नवीन उपमानों और यथार्थ-वादिता की दृष्टि से श्रेष्ठ कहा जाता है तथा कवि माथुर की इस प्रारम्भिक कविता से यह सिद्ध हो जाता है कि अन्य कई समकक्ष प्रयोगवादी कवियों की तुलना में गिरिजाकुमार जी को काफी पहले ही मुक्त छन्द में नवीन प्रयोगों की सृष्टि में आशातीत सफलता प्राप्त हुई थी। उदाहरणार्थ, 'प्रेम से पहले' की कुछ पंक्तियाँ दर्शनीय हैं—

गंगा के रेत भरे मरु से किनारे पर,
हम तुम मिले थे उस सूनी दुपहरी में।
शिशिर के क्षणों की उस मीठी दुपहरी में।
यौवन के भाग्य से
जीवन के अभाग्य से।
तुम थीं छिपाये हुए मोह भरी माया एक
उस श्याम जादू की काली-सी छाया एक।
अपने भोलेपन में।
तुम थीं अजान बड़ी—
सब कुछ समझती थीं फिर भी अंजान थीं।
सुन्दर दुरावमयी,
तुम बड़ी भोली हो,

\+ \+ \+

पहिले मैं देवता था
अब मैं पुजारी हूँ
इतना पतन आज
अब तुम बनी हो सुन्दरता की पूज्य देवि
पूजते हैं तुमको हम प्राणों में बिठला के
एक दिन वह था जब
तुम बनी पागल थीं मेरा प्रेम पाने को
प्यार तो हमारे इस रूप पूर्णिमा से सखि
मुझको है प्रेम खूब
जिसको मैं एक दिन ध्यान में न लाता था।

इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि कवि माथुर के सर्वप्रथम काव्य संग्रह 'मंजीर' में संकलित प्रारंभिक कविताओं में ही हमें कवि में नूतन छंद एवं रूपाकारों के प्रयोग में नवीन बिम्बों के द्वारा आत्मीय एवं वैयक्तिक अंतरंग अनुभूतियों की उद्भावना करने की प्रवृत्ति के दर्शन होते हैं इतना ही नहीं इन प्रारंभिक कविताओं में हमें कवि के सूक्ष्म सौन्दर्य बोध एवं जीवन और जगत की समस्याओं के साथ-साथ इतिहास बोध भी लक्षित होता है। इस दृष्टि से 'मंजीर' में संकलित 'कवि माथुर' की कविता 'अदन पर बमवर्षा' एक अत्यंत महत्वपूर्ण कविता है। इसकी रचना मुक्त संगीत में की गयी है और विषय एवं छंद की दृष्टि से यह निस्संदेह एक सर्वथा नवीन प्रयोग है। देखिए—

कोसों दूर हमारे इस एकांत ग्राम से
हलके बादल की भरी हुई ईशान दिशा में
सुन्दर राजनगर है
ऊँचे-ऊँचे महल चमकते
चिकनी सड़कें बाग बगीचे
बिजली की रोमांस भरी पेड़ों में से छनती उजियाली
मोती के रंग के बंगलों को
किरणों की बाहों में धीमें से लिपटाये
वहाँ एक उजले फूलों-सी खिली जगह पर

मेरा भी कोई रहता है।
पश्चिम के गोधूल गगन में रण की काली आँधी आई
जिसकी लम्बी छाया
अपने निर्जल सागर के तट पर आ पहुँची
क्या होगा उनका जिनकी पूजा को—
अपनी विवश गरीबी में भी सब कुछ वारा
यदि आयेंगे अत्याचारी
सुन्दर सुन्दर नगर ग्राम को
खंडहर औ वीरान बनाने
क्या होगा इन आँखों में रहने वालों का
क्या होगा इन सपनों में बसने वालों का
अपनी कमजोरी की परवशता में
तरस तरस कर रह बेबस रह जाने वालों का।
खाली हाथ बैठे हैं हम
औरों की इच्छा पर जीने को
जो थोड़ा थोड़ा होता है
आने वाले कठिन दिनों में
कैसे मिल पायेंगे—
हम तुम प्यार भरे दो प्राणी
बहुत दिनों की बिछुड़ी हुई वियोगी आँखें।

सामान्यतया 'मंजीर' की अधिकांश कविताओं में करुण गंभीर विषाद के ही दर्शन होते हैं और कवि माथुर की इन प्रारंभिक कविताओं का अनुशीलन करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि कवि को अत्यंत कोमल, भावुक एवं संवेदनशील हृदय प्राप्त हुआ है तथा वह इस भावुकता का अंचल गंभीरता से संभाले हुए है। इस प्रकार कवि का हृदय मिलनसुख की स्मृति से आकुल जान पड़ता है और मिलन की पूर्व स्मृति उसके मानस पटल पर तैरती उतराती रहती है—

कहीं दूर गंगा के तट पर

फैली सुधि किरणें निखरी-सी
लहरों में बहते उतराते।
बीती बातों के ध्रुव तारे,
अब तक सुधि में रेत वहाँ की,
लगती मृदु पग चिह्न भरी-सी।
खिंच जाती तसवीरें अब—
अपने नयनों के मूक मिलन की।

कभी-कभी ऐसी अवस्था भी आती है कि कवि का मन अत्यंत व्यथित हो उठता है और उस समय कवि अपने मन को सांत्वना देते हुए कहता है—

अब न उदास करो मुख अपना
बार-बार फिर कब है मिलना

इतना ही नहीं कवि अपनी भावनाओं को उदात्त भी बनाना चाहता है—

अभी और देनी है कितनी
अपनी निधियाँ और किसी को

शनैः-शनैः जब समय बीत जाता है तब विरह का दंश कुछ हलका हो जाता है पर जब कभी उसकी कटुता मानस पटल पर उभरती है तब कवि उस समय की दशा का स्मरण एवं विश्लेषण करने लगता है—

प्यार बड़ा निष्ठुर था मेरा!
कोटि दीप जलते थे मन में,
कितने मरु तपते यौवन में!

प्रेम भाव की मधुर अभिव्यक्ति के साथ-साथ 'मंजीर' में प्रकृति के कई सफल चित्र भी गुँथे पड़े हैं और कवि माथुर की इन प्रारंभिक कविताओं ने संध्या एवम् अर्द्धरात्रि के चित्र अधिक मात्रा में विद्यमान हैं। इस प्रकार कहीं तो प्रकृति के स्वतंत्र चित्र हैं और कहीं प्रकृति उद्दीपन के रूप में या फिर मानवीय भावों की छाया बनकर अभिव्यक्त हुई है। नारी रूप में वर्षा का यह मनोरम चित्र दर्शनीय है—

आई बरसात आज !
गीली अलकों से वारि बूंदें चुआती हुई,
झीनी झोलियों से मुक्त मुक्ता लुटाती हुई;
कोयल सा श्यामल स्वर—
भीगी अमराई से आता है पल-पल पर
सुरमीली आँखों को ढांक रही श्याम अलक,
साँवली बदलियों का उड़ता-सा घूंघट पर
छिपता-सा इन्दु बदन जाता है झलक-झलक
उठती नत चितवन जब हलकी-सी विद्युत बन।

'मंजीर' में संकलित कवि माथुर की प्रारंभिक कविताओं का कला-पक्ष भी सराहनीय है और इन कविताओं का सर्वाधिक प्रशंसनीय गुण उनकी सरलता ही है। सत्य तो यह है कि इस कविता संग्रह की अधिकांश कविताएँ सादगी, भाव एवम् गेयत्व की दृष्टि से प्रशंसनीय हैं और इस संबंध में 'मंजीर' की सर्वप्रथम कविता 'थोड़ी दूर और चलना है' की कुछ पंक्तियाँ दर्शनीय हैं—

थोड़ी दूर और चलना है।
मुरझ चली प्राणों की गुँजन,
थकती जाती स्वर की कम्पन।
बीती सब जीवन की सिहरन,
ओ गीतों के पथिक ! इसी सुनसान विजन वन में रुकना है।

इसमें कोई संदेह नहीं कि 'मंजीर' में संकलित कवि माथुर की इन प्रारंभिक कविताओं से ही यह स्पष्ट हो जाता है कि कवि नवीनतम प्रयोगों की ओर आकृष्ट हुआ है और वह कविता में नवीन शिल्प, उपमान, भाषा एवं नूतन भाव वस्तु की खोज कर परम्परागत कविता से पृथक् हो अपना एक नवीन मार्ग स्थापित करने की अभिलाषा रखता है लेकिन कवि ने कहीं भी अपनी उक्तियों को अस्वाभाविक नहीं होने दिया। हम लोग मानते हैं कि कवि माथुर ने शब्दों में 'इक' 'ना' और 'आन' के प्रयोग भी किए हैं तथा वह

कहीं-कहीं 'पूछो तो' भी लिख गये हैं। इसी प्रकार उन्होंने 'उजलें' जैसी क्रियाओं का भी निर्माण किया है पर किसी भी कवि की प्रारंभिक कृति में ऐसी त्रुटियाँ दोषों के अंतर्गत नहीं आतीं। सत्य तो यह है कि मनोदशा और वातावरण को समुचित रूप से अंकित करने के लिए कवि माथुर ने नवीन उपमानों की ही योजना की है; जैसे 'मरते ओले जैसा मन' और 'रुँधी हुई छाती सा सूना पन।' आश्चर्य तो इस बात का है कि जिन प्राकृतिक वस्तुओं के केवल रूप या प्रभाव पर ही अधिकांश व्यक्तियों का ध्यान जाता है उनकी स्थूलता या सूक्ष्मता भी कवि माथुर ने न जाने कैसे देख ली; उदाहरणार्थ 'पतली चाँदनी।'

उक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि कवि माथुर की प्रथम काव्य-कृति 'मंजीर' ही उन्हें एक सफल एवं स्वाभाविक कवि सिद्ध करने के लिए पर्याप्त है और 'मंजीर' में संकलित कवि माथुर की प्रारंभिक कविताओं में हमें भाव एवं कला दोनों ही दृष्टियों से वैविध्यता के दर्शन होते हैं। इस प्रकार न तो डॉ० कैलाश वाजपेयी के इस कथन से ही पूर्णतः सहमत हैं कि 'मंजीर की रचनाएँ किशोर मन के स्वप्न चित्र हैं' और न डॉ० शिवकुमार मिश्र का यह मत ही पूर्णतया उपयुक्त समझते हैं कि मंजीर की कविताओं पर 'रुग्ण रोमान और क्षय की छाप' गहराई से अंकित है।

हो सकता है कि 'मंजीर' की इन प्रारंभिक कविताओं में शृंगारिकता, और करुण विषाद के स्वर प्रबल रूप में हों लेकिन यह नहीं कहा जा सकता कि 'मंजीर' का रचयिता संसार की अन्य समस्याओं से सर्वथा अनभिज्ञ है और उसके समक्ष कोई भी सांसारिक समस्या नहीं है। इस प्रकार डॉ० कृष्णदेव शर्मा का यह कथन हमारी दृष्टि में सर्वथा हास्यास्पद है कि 'मंजीर में कवि दुनिया की अन्य समस्याओं से सर्वथा अनभिज्ञ है।····उसके चिन्तन का आयाम केवल वैयक्तिक सम्बन्धों तक ही सीमित है। संभव है अपने काव्यपथ की आरंभिक अवस्था के कारण कवि के युवा हृदय को छायावादी सरस अभिव्यक्तियों ने अधिक आकर्षित किया हो जिसकी अभिव्यक्ति प्रकारान्तर से इस संग्रह की कविताओं में हुई हो।'

संभवतः डॉ० कृष्णदेव शर्मा ने 'मंजीर' की कविताओं का अनुशीलन—

बल्कि विहंगावलोकन—किये बिना ही मंजीर की समीक्षाएँ पढ़कर अपना उक्त मत प्रकट कर दिया है क्योंकि वह यदि 'मंजीर' में संकलित 'रेल का पहिया' और 'अदन पर बम वर्षा' नामक कविताओं का अनुशीलन करते तो कदापि उक्त मत न प्रकट करते। अतएव हम पुनः यहाँ यह तथ्य दोहराना उचित समझते हैं कि नवीन प्रयोगों की ओर आकृष्ट कवि माथुर के इस सर्वप्रथम कविता संग्रह की प्रारंभिक कविताओं में ही हमें नूतन छंद विधान, नवीन बिम्बों की योजना और आत्मीय एवं वैयक्तिक अंतरंग अनुभूतियों की उद्भावना के साथ-साथ बाह्य वास्तविकता भी जीवन एवं जगत की समस्याओं का बोध तथा पैनी इतिहास दृष्टि का परिचय मिलता है। इस प्रकार 'मंजीर' की यह उपलब्धि निर्विवाद रूप से महत्वपूर्ण ही कही जाएगी।

तारसप्तक

यद्यपि 'मंजीर' के प्रकाशन के पश्चात् कवि माथुर का दूसरा कविता संग्रह सन् १९४६ में ही प्रकाशित हुआ पर इस अवधि में उनकी रचनाएँ अनेक विशिष्ट पत्र पत्रिकाओं में प्रकाशित होकर साहित्यिक चर्चा का विषय अवश्य बन रही थीं। इस बीच अज्ञेय द्वारा सम्पादित 'तार सप्तक' का प्रकाशन सन् १९४३ में हुआ और तार सप्तक द्वारा ही हिन्दी कविता में प्रयोगवादी काव्यधारा का प्रारम्भ भी माना जाता है। इस 'तार सप्तक' में गजानन मुक्तिबोध, नेमिचन्द्र जैन, भारतभूषण अग्रवाल, प्रभाकर माचवे, गिरिजा कुमार माथुर, रामविलास शर्मा और अज्ञेय की कविताएँ संकलित थीं। यहाँ यह भी ध्यान में रखना होगा कि 'तारसप्तक' के पक्ष-विपक्ष में बहुत कुछ लिखा गया और कवि माथुर की भी विपुल परिमाण में चर्चा हुई। सत्य यह है कि गिरिजाकुमार जी के प्रथम कविता संग्रह 'मंजीर' की कविताओं का सामान्य परिचय देने की ओर समीक्षकों का ध्यान 'तारसप्तक' के प्रकाशन के उपरान्त ही गया अतः यहाँ 'तार सप्तक' में संगृहीत गिरिजा कुमार जी की कविताओं पर एक विहंगम दृष्टि डालना आवश्यक हो जाता है।

'तार सप्तक' के प्रथम संस्करण में गिरिजाकुमार जी की 'आज हैं

केसर रंग रँगे वन, रुक कर जाती हुई रात, चूड़ी का टुकड़ा, रेडियम की छाया, कुतुब के खंडहर—पानी भरे बादल, क्वाँर की दोपहरी, भीगा दिन, एसोसिएशन, विजयदशमी, अधूरा गीत और बुद्ध—नामक बारह कविताएँ संकलित हैं तथा इन कविताओं के प्रारंभ में कवि माथुर का वक्तव्य भी साढ़े तीन पृष्ठों में दिया गया है। अपने इस वक्तव्य के प्रारंभ में ही गिरिजा-कुमार जी ने कहा है 'कविता में विषय से अधिक टेकनीक पर ध्यान दिया है। विषय की मौलिकता का पक्षपाती होते हुए भी मेरा विश्वास है कि टेकनीक के अभाव में कविता अधूरी रह जाती है। इसी कारण चित्र को अधिक स्पष्ट करने के लिए मैं वातावरण के रंग उसमें भरता रहा हूँ।' इस इस प्रकार तार सप्तक' में संकलित कवि माथुर की कविताओं में वातावरण का चित्रण ही प्रमुख रूप में किया गया है और इसमें कोई संदेह नहीं कि कवि द्वारा अंकित ऐसे दृश्य—जिनमें केवल वातावरण की प्रधानता है या जिनमें केवल वातावरण का ही चित्रण किया गया है—प्रभावशाली और हृदय स्पर्शी हैं। उदाहरणार्थ; तारसप्तक' में संकलित कवि माथुर की 'कुतुब के खंडहर' नामक कविता दर्शनीय है—

सेमल की गरमीली रुई समान
जाड़ों की धूप खिली नीले आसमान में
झाड़ी झुरमुटों से उठे लम्बे मैदान में।
रूखे पतझर भरे जंगल के टीलों पर
काँप कर चलती समीर हेमन्त की
लम्बी लहर सी।
दूरी के ठिठुरे-से भूरे-भूरे पेड़ों पर
ठण्डे बबूले बना धूल छा जाती थी—
रेतीले पैरों से धीरे ही दाब कर
काई से काले पड़े ध्वंस राजमहलों को
पत्थर के ढेर बने मंदिर मजारों को
जिनसे अब रोज साँझ कुहरा निकलता था
प्यासे सपनों की मँडराती हुई छाँह-सा

गूंजता था सूनसान—
ऊजड़ खँडेरों में
गिरते थे पत्ते,
वन-पंछी नहीं बोलते थे,
नाले की धार किनारे से लगी जाती थी।

'तार सप्तक' में कवि माथुर की कुछ कविताएं ऐसी भी हैं जिनमें कवि ने प्रारंभिक पंक्तियों में कविता की आधार भूमि का निर्माण किया है। उदाहरण के लिए 'क्वाँर की दोपहरी' की इन प्रारंभिक पंक्तियों को उद्धृत किया जा सकता है—

क्वार कीं सूनी दुपहरी
श्वेत गरमीले, रुयें से बादलों में,
तेज सूरज निकलता फिर डूब जाता।
घरों में सुनसान आलस ऊंघता है,
थकी राहें ठहर कर विश्राम करतीं,
दूर सूनी गली के उस छोर पर से
नीम नीचे खेलते कुछ बालकों की
किली-सी आवाज आती।

इसमें कोई संदेह नहीं कि हिन्दी काव्य ग्रंथों में जितनी अधिक चर्चा 'तार सप्तक' की हुई उतनी कदाचित ही किसी काव्य संकलन की हुई होगी। इतना ही नहीं इस काव्य ग्रंथ के सम्बन्ध में यह भी कहा जाता है कि 'कम होती हैं काव्य कृतियाँ जो स्वयं इतिहास का एक अंग बन जायें और आगे के लिए दिशा दृष्टि दे सकें। बिना अत्युक्ति भय के 'तार सप्तक' के लिए यह कहा जा सकता है। जो सात कवि १९४३ के प्रयोगी थे वे आज के संदर्भ हैं, और उनका यह काव्य संकलन आधुनिक हिन्दी काव्य के विकास में एक मील का पत्थर, आलोक शिखा।'

इसके बावजूद 'तार सप्तक' का दूसरा संस्करण कई वर्षों तक प्रकाशित नहीं हुआ और बीस वर्ष से अधिक समय की प्रतीक्षा के उपरान्त

सन् १९६६ में 'तार सप्तक' का दूसरा संस्करण प्रकाश में आया। इतना अवश्य है कि 'तार सप्तक' का यह द्वितीय संस्करण संशोधित-परिवर्धित रूप में प्रकाशित हुआ है ओर 'तार सप्तक' में संकलित प्रत्येक कवियों ने पहले संस्करण में संकलित कविताओं के उपरान्त पुनः अपनी नवीन कविताएँ संकलित की हैं तथा अपना व्यक्तव्य भी पुनश्च शीर्षक के अंतर्गत दूसरी बार पुनः दिया है। हम यह संकेत कर देना उचित समझते हैं कि 'तार सप्तक' के पहले संस्करण में दी गयी कविताओं में अवश्य कोई परिवर्तन नहीं किया गया।

इस प्रकार 'तार सप्तक' के दूसरे संस्कार में गिरिजाकुमार जी की पहले संस्करण वाली बारह कविताओं के पश्चात 'पुनश्च' शीर्षक से लगभग नौ पृष्ठों में कवि माथुर का दृष्टिकोण विस्तारपूर्वक अभिव्यक्त हुआ है और तदुपरान्त उनकी निम्नलिखित नौ रचनाएँ, संकलित हैं—नया कवि, देह की दूरियाँ, बरकुल, दो पाटों की दुनिया, असिद्ध की व्यथा, पृथ्वीकल्प, गीतिका, छाया मत छूना और निर्वासन। इनमें से पृथ्वीकल्प प्रतीक नाट्य है और शेष सभी कविताएँ हैं पर ये सभी कविताएँ कवि माथुर के काव्य संकलनों में सग्रहीत हैं अतः उनकी समीक्षा यहाँ पृथक रूप से करना उचित नहीं है। क्योंकि उक्त काव्य संकलनों का संक्षिप्त मूल्यांकन यहाँ इस अध्याय में किया जा रहा है।

नाश और निर्माण

सन् १९४६ में कवि माथुर का दूसरा कविता संग्रह 'नाश और निर्माण' प्रकाशित हुआ पर इस काव्य संकलन की कविताएँ इसके प्रकाशन के पूर्व ही 'तार सप्तक' में प्रकाशित होकर चर्चा का विषय बन चुकी थीं और गिरिजाकुमार जो भी साहित्य जगत के लिए अपरिचित नहीं रहे थे। इतना होते हुए भी 'नाश और निर्माण' का न तो सम्यक् मूल्यांकन ही किया गया और न उसका यथेष्ट प्रचार ही हुआ लेकिन यह तो निर्विवाद रूप से सत्य है कि 'नाश और निर्माण के प्रकाशन ने कवि के व्यक्तित्व को नया आयाम दिया था।'

'मंजीर' के सदृश्य कवि माथुर के इस दूसरे काव्य संकलन के सम्बन्ध में भी समीक्षक पृथक-पृथक मत व्यक्त करते हैं और डा० शिवकुमार मिश्र ने तो 'नाश और निर्माण' की अधिकांश कविताओं को छायावाद व प्रगतिवाद के सधिकाल की उपज मानते हुए कहा है कि 'इस काल के कवियों में पुराने के मोह और नवीन के आकर्षण का जो एक द्वन्द्व देख पड़ता है, माथुर जी की ये कविताएँ भी उसी का प्रतिनिधित्व करती हैं। कवि जीवन के एक पहलू का परिचायक उसका नाश पक्ष है, दूसरे का उसका निर्माण पक्ष। प्रेम और सौन्दर्य यहाँ भी कवि की लेखनी के विषय बने हैं, परन्तु निराशा और विषाद अधिक गहराई से कवि के जीवन में उतर गये प्रतीत होते हैं। थकान, पराजय ऊब और उदासी से कवि आक्रान्त है।····बहुधा ही उसकी वृत्ति स्थूल शृंगारिकता की ओर उन्मुख हो जाती है।····यदा कदा उसके मानस में चलने वाला द्वन्द्व भी उभरता है और यह द्वन्द्व उसके मानस में कुछ ऐसी रेखाओं का निर्माण कर जाता है, एक ऐसी लीक छोड़ जाता है, जिसे पकड़ कर ही कवि निर्माण की ओर अग्रसर होता है। निराशा और अवसाद की छायायें अब भी उसे पीड़ित करती हैं, पर अब वे पुराना स्थायित्व नहीं प्राप्त कर पातीं। कवि की सजग सामाजिक चेतना, जिसकी हल्की रेखायें उसके मस्तिष्क में मंजीर काल से ही थीं—उन पर विजयी होती हैं और उसके कंठ से शक्ति और दृढ़ता, आशा और उल्लास के वास्तविक स्वर टूटते हैं। सामाजिक चेतना की यह अनुभूति उसे पूंजीवाद और साम्राज्यवाद के नग्न स्वरूपों से परिचित कराती है और वह न केवल उनके कारण उत्पन्न विषमताओं के मार्मिक चित्र ही खींचता है, उन्हें ऊँचे स्वरों में चुनौती भी देता है। यहीं कवि की दृष्टि अपने गौरवमय अतीत की ओर भी जाती है और वह अपनी सामाजिकता के ही एक अंग के रूप में अतीत युग की महान विभूतियों और उनके गौरवमय कार्यों को अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करता है।····उसकी भावनाएँ जन जन की वाणी बनने की आकांक्षा से ओत-प्रोत हो उठती हैं, और अंततः इसी शक्ति के बल पर वह नाश की छाती पर निर्माण का भवन खड़ा करता है।'

दूसरी ओर एक अन्य विचारक का कहना है कि 'नाश और निर्माण

की रचनाएँ स्पष्ट रूप से कवि की दोहरी मन:स्थिति को रेखांकित करती है। रचनाएँ पढ़कर ऐसा लगता है जैसे कवि किसी संधि रेखा पर खड़ा है, जहाँ से एक रास्ता आगे जाकर मृत्यु की काली गहराइयों में खो गया है और जहाँ शताब्दियों का अंधकार जमकर चिरंतन अनस्तित्व की चट्टानों में परिणत हो चला है और दूसरा रास्ता इसके ठीक विपरीत उस ओर गया है जहाँ सुबह की धूप है और खुले आकाश के नीचे फूलों के समुद्र में स्नान कर आई हवा मैदानों और पर्वतों पर संगीत बिखेर रही हैं।'

इस प्रकार 'मंजीर' के सदृश्य 'नाश और निर्माण' के सम्बन्ध में भी समीक्षक पृथक्-पृथक् मत व्यक्त करते हैं लेकिन 'नाश और निर्माण' की कविताओं का सम्यक् अनुशीलन करने पर स्पष्ट हो जाता है कि उन्हें छाया-वाद व प्रगतिवाद के संधिकाल की उपज समझना उपयुक्त नहीं है। साथ ही 'नाश और निर्माण' की कविताओं को कवि माथुर की दोहरी मन: स्थिति का द्योतक समझना भी भ्रांतिमूलक कहा जाएगा और कवि माथुर अपनी इस काव्यकृति के निर्माण की अवस्था तक किसी संधि रेखा पर स्थित नहीं थे बल्कि उन्होंने अपने निश्चित पथ का निर्माण तो बहुत पहले ही कर लिया था। इसी प्रकार 'नाश और निर्माण' की कविताओं में 'प्रगति' और 'प्रयोग' का अभूतपूर्व संयोग समझना भी कवि की मूल भावना के साथ पूर्ण न्याय नहीं करता।

हाँ, यदि प्रगति का रूढ़िवादी अर्थ प्रगतिवाद न ग्रहण किया जाय और हम प्रगति का सहज-स्वाभाविक अर्थ ही ग्रहण करें तो अवश्य 'नाश और निर्माण' की कविताओं में 'प्रगति' एवं प्रयोग' का अभूतपूर्व संयोग माना जा सकता है पर विचारपूर्वक देखा जाय तो 'यही वह स्रोत ग्रन्थ है जिसकी कविताओं में प्रयोगवाद और नई कविता की समर्थ पीठिका है।' अपने इस कथन की पुष्टि में हम यहाँ यह कहना उचित समझते हैं कि इस काव्य संग्रह में कवि माथुर छन्द विधान की दिशा में भी प्रयोगशील जान पड़ते हैं और इस काव्यकृति की लगभग सभी कविताएँ मुक्त छन्द का सफल प्रयोग हैं। इतना ही नहीं 'नाश और निर्माण' में कुछ कविताएँ ऐसी भी हैं जिनमें कवि ने

सवैये को तोड़कर एक नवीन छन्द का निर्माण किया है। उदाहरणार्थं यहाँ 'बसंत की रात' कविता दर्शनीय है—

आज हैं केसर रंग रँगे वन;
रंजित शाम भी फागुन की पीली कली सी,
केसर के वसनों में छिपा तन,
सोने की छाँह सा,
बोलती आँखों में
पहिले बसंत के फूल का रंग है।
गोरे कपोलों पै हौले से आ जाती है,
पहिले ही पहिले के,
रंगीन चुम्बन की सी ललाई।
आज हैं केसर रंग रँगे—
गृह, द्वार, नगर, वन,
जिसके विभिन्न रंगों में है रंग गई
पूनों की चंदन चाँदनी।
जीवन में फिर लौटी मिठास है,
गीत की आखिरी मीठी लकीर-सी
प्यार भी डूबेगा गोरी-सी बाँहों में,
ओठों में, आँखों में,
फूलों में डूबे ज्यों
फूल की रेशमी-रेशमी छाँहें।

इसी प्रकार कवि माथुर ने 'नाश और निर्माण' में प्रगीत काव्य (लीरिक) का भी एक नवीन प्रयोग किया है जिसमें परम्परागत व्यंजन तुकान्तों के बदले स्वरध्वनियों के माध्यम से तुकान्त प्रस्तुत किये गये हैं—

लो ये उजियाले के घेरे फिर आसमान की ओर चले।
छै वर्षों पहले आई थी
काली तूफानी एक रात
रक्तिम पुच्छल तारा डूबा

ज्यों शाम-मृत्यु का उठता फास फोरसी हाथ
निज इस्पाती बाहें पसार
फैल गई, युग के पृष्ठों को
काली स्याही से रँगती
छै वर्षों की वह एक रात ।

जब हम 'नाश और निर्माण' में संकलित कविताओं की भावभूमि के सम्बन्ध में विचार करते हैं तो हमारा ध्यान इस ओर जाता है कि 'मंजीर' के सदृश्य 'नाश और निर्माण' की कविताओं में वैविध्यता होते हुए भी इस कविता संग्रह में भी प्रणय का स्वर प्रबल रूप से है तथा कवि का विषाद ही अधिकांश कविताओं में मुखरित हो उठा है। इस प्रकार 'नाश और निर्माण' की कविताओं में कवि ने प्रेमी के हृदय की निराशा एवं व्यथा का चित्रण करते हुए कहा है कि निराशा की अधिकता में प्रेमी कभी-कभी प्यार पर ही संदेह करने लगता है और जब कभी अतीत के कुछ सुखद पल एवं मिलन स्थल स्मृति-पटल पर विचरण करने लगते हैं तब वह अत्यधिक आकुलता का अनुभव करता है। इस प्रसंग में प्रकृति का चित्रण भी प्रणयी की मानसिक दशा के अनुकूल हुआ है—

कौन थकान हरे जीवन की ?
वंशी में अब नींद भरी है,
स्वर पर पीत साँझ उतरी है
बुझती जाती गूंज अखीरी—

इस उदास वन पथ के ऊपर
पतझर की छाया गहरी है;
अब सपनों में शेष रह गई
सुधियाँ उस चंदन के वन की।

\+ + + +

रात हुई पंछी घर आये,
पथ के सारे स्वर सकुचाये,

थके प्रवासी की आँखों में
आँसू आ-आकर कुम्हलाये।

उक्त उद्धरण में से प्रथम चार पंक्तियाँ रोमानी आभा से मंडित हैं और 'मन की कविता का रूठना', वंशी में नींद का भर जाना, स्वर पर पीली साँझ का उतरना तथा अंतिम गूँज का क्रमशः तिरोभाव होना आदि सभी रोमानी आभा के उपकरण ही हैं। यहाँ यह स्मरणीय है कि अन्तिम चार पंक्तियों में कवि ने तरल बिम्बों का प्रयोग नहीं किया और उनसे जो बिम्ब उभरते हैं उनमें छायावादी वायवीयता का अभाव ही है। सत्य तो यह है कि रात्रि होने पर पंछियों के घर लौटने में पथ के कोलाहल की परिश्रांति है और थके प्रवासी के नेत्रों में अश्रुओं के भरने एवं सूख जाने में जो बिम्ब उभरते हैं उनमें निस्संदेह स्थूलता ही है। इसीलिए हमने 'नाश और निर्माण' की कविताओं को छायावादी प्रभाव से रहित माना है और डा० नगेन्द्र ने तो स्पष्ट रूप से यही कहा है 'इन कविताओं की आधारभूत अनुभूतियाँ अत्यन्त सूक्ष्म और परिष्कृत होते हुए भी मूर्त और मांसल हैं उनमें एक ओर छायावाद की अतीन्द्रिय श्रृंगार भावना का अभाव है और दूसरी ओर प्रगतिवाद की अनगढ़ स्थूलता भी नहीं है। रूप और रस के मांसल स्पर्श परिष्कृत कल्पना के संसर्ग से अत्यंत रमणीय बन गये हैं। यह श्रृंगार न तो भूखे तन और भूखे मन का आहार है और न किसी सदृश्य आलम्बन के साथ कल्पना-विहार है—कवि ने जीवन की मधुर भावना को बड़े ही हल्के हाथों से, किन्तु पूरी गहराई के साथ बिम्बित करने का सफल प्रयत्न किया है।' इस प्रकार 'नाश और निर्माण' की रचनाओं में व्यक्त प्यार में वासना एवं भोग का पुट होते हुए भी चित्रण में नवीनता के ही दर्शन होते हैं। उदाहरणार्थ—

इस रंगीन साँझ में तुमने,
पहने रेशम वस्त्र सजीले
भरी गोल गोरी कलाइयों में पहिनी थीं
नयन डोर सी वे महीन रेशमी चूड़ियाँ,
चन्दन बाँह उठाते ही में
खिसल चली वे तरल गूंज से

उदय हो रहा इन्द्र सुनहला
पूर्व सिन्धु से जैसे ऊपर उठता आता
रत्न कलश भर कर सम्पूर्ण सुधा रजनी की
आज यही रस डूबा चाँद बन गई हो तुम।

और भी—

पूस की ठिठुरन भरी इस रात में
कितनी तुम्हारी याद आई।
याद आए मिलन वे,
मसली सुहागिन सेज पर के सुमन वे।

इस प्रकार कवि माथुर ने संयोग के सुखद चित्रों को अंकित करते समय उनमें भी नवीनता का समावेश किया है और उनकी उक्तियाँ अतीन्द्रिय या वायवी न होकर मांसल ही हैं पर उनमें नूतन अनुभूतियों की सुरम्यता के ही दर्शन होते हैं। इसी प्रकार कवि आत्म विश्लेषण करते हुए कभी-कभी अपनी भावाओं की अभिव्यक्ति निम्न प्रकार से करता है—

छल किया था आरती मैंने सजाकर
जीत समझी हार के दीपक जलाकर
प्यार खोया था मगर मैं प्यार लाया
स्वयं भूला एक क्षण तुमको भुलाकर

कवि माथुर की दृष्टि प्रणय भावनाओं के अतिरिक्त आज की उस आर्थिक विषमता पर भी गयी है, जिसके कारण व्यक्ति का जीवन विषमय होता जा रहा है। इस प्रकार युग की पृष्ठभूमि में मध्यवर्ग की आशा-आकांक्षाओं, विफलताओं-निराशाओं और स्वप्न एवं असंतोष का जैसा यथातथ्य वर्णन माथुर जी की कविताओं में मिलता है, वैसा बहुत ही कम नये कवियों की कृतियों में मिलता है। सत्य तो यह है कि माथुरजी आधुनिक नगरों के कवि हैं और उनकी कविताओं में आधुनिक सभ्यता एवं विज्ञान की देन के मध्य किसी बड़े नगर के मध्य वर्ग के तरुण-तरुणियों की प्रणय क्रीड़ा का सुन्दर वर्णन किया गया है। यही कारण है कि माथुरजी की कविताओं में बार-बार सिविल लाइन्स, लॉन, बँगला, कार, रेडियो, बल्ब, चिक, घड़ी और प्लेट

तथा चम्मच की चर्चा हुई है तथा उन्होंने किसी निम्न मध्यवर्ग के व्यक्ति के जीवन की तुलना उच्चवर्ग के व्यक्ति को प्राप्त होने वाली सुविधाओं से करते हुए कहा है—

कुहरा भरा भोर जाड़ों का
शीत हवा में ठंडे सात बजे हैं,
ठिठुरन से सूरज की गरमी जमी हुई है,
सारा नगर लिहाफों में सिकुड़ा होता है,
पर वह मजबूती से कँपता उठ आया है,
दोनों बाँह कसे छाती पर।

× × × ×

पीले से गालों पर है कुछ शेव बढ़ी-सी
मसली हुई कमीज के कफ में
बटनों के बदले दो दो डोरे बँधे हुए हैं
रफू किया उसका वह स्वेटर
तीन सर्दियाँ देख चुका है,
बुझी हुई सिगरेट रात को पीते पीते
घड़ी देखता जाता है वह,
जिसके एक जगह चलते रहते काँटों-सा
उसका जीवन जीवन हीन मशीन बन गया।

× × × ×

कोकोजम में तले पराँठों के ही बल पर
वह दिमाग का बोझा ढोता
और साथ में
क्षय सा काला नाग पालता रक्त पिलाकर।

× × × ×

नगर भरा है सुन्दरता से—
ऊँचे-ऊँचे चंदन रंग के महल खड़े हैं,
फैली हैं काजल सी चिकनी चौड़ी सड़कें

दूर दूर तक
बीच बीच में मोती के गुच्छों से
गोरे पार्क बने हैं ।
मखमल से हैं हरी घास के लान मुलायम

× × × ×

भूत बना उसका मन बाहर घूम रहा है,
उन मोटे लानों के ऊपर
अपनी रुग्णा पत्नी की सूनी आँखों में ।
उजले अँगरेजी महलों से
मृदुल पियानों के स्वर आते

× × × ×

बाहर महलों पर मिठास है फैली फैली
क्रीम सेंट की खुशबू भरी मोटरें जातीं ।

इससे स्पष्ट हो जाता है कि कवि माथुर की दृष्टि जीवन और जगत की समस्याओं के प्रति भी रही है और पुरानेपन के नाश एवं नवीन निर्माण की आतुरता इस काव्य संकलन की कविताओं की एक महान विशेषता है तथा इन कविताओं में सामयिक जीवन की संघर्षशील अवस्था का चित्रण भी किया गया है । यहाँ यह भी ध्यान में रखना होगा कि कवि माथुर सभी प्राचीन बातों के विरोधी नहीं हैं और डॉ० रमाकांत शर्मा के शब्दों में 'सामान्य वस्तु के भी असामान्य सौन्दर्य को देखने और उसे चित्रित करने की इनकी शक्ति अद्वितीय है । उन ऐतिहासिक पात्रों की महान मानवीय परंपरा को कवि बड़ी सुन्दरता से चित्रित करता है जिन्होंने स्वस्थ मानव जीवन के लिए नवीन सत्यों को प्रस्तुत किया था । पुराना सब कुछ हेय नहीं था, कुछ ऐसा भी रहा जिसके बल पर सभ्यता की इमारत खड़ी हुई है । प्रगति के पागलपन में वह सब कुछ भूल जाना बड़ा अहितकर होगा । बुद्ध और गाँधी जैसे कालातीत पुरुषों का सत्य कभी त्याज्य न होगा, परम्परा के नाम पर इनकी उपेक्षा कभी संभव नहीं हो सकती ।' इस प्रकार कवि माथुर की दृष्टि देश के उन महापुरुषों की ओर भी

गयी है जो हमारी श्रद्धा के पात्र रहे हैं और उक्त महापुरुषों में राम-रहीम की एकता स्थापित करने वाले कबीर, प्रेम से विश्व को जय करने वाले गौतम बुद्ध तथा इतिहास एवं युगों को चीरकर आज तक जनता के हृदय में घर करने वाले मर्यादा पुरुषोत्तम राम प्रमुख रूप से हैं।' इस प्रकार कवि माथुर ने 'बुद्ध' शीर्षक कविता में यही कहा है—

आज लौटती आती है पदचाप युगों की
सदियों पहिले का शिव-सुन्दर मूर्तिमान हो
चला जाता है बोझीले इतिहासों पर,
श्वेत हिमालय की लकीर-सा।

× × × ×

फैल गई थीं मिट्टी के अंतर की बाँहें,
सत्य और सुन्दरता के अविरल संघों से
स्याम, ब्रह्म, जापान, चीन
गांधार, मलय तक
दीर्घ विदेशों के अशोक साम्राज्यों ऊपर।
नहीं रहे वे महावंश अब
वे कनिष्क से, शिलादित्य से नाम हजारों,
किन्तु तक्षिला, साँची, सारनाथ के मंदिर,
और जीति स्तम्भ धर्म के बोल रहे हैं
जिस सीमा पर पहुँच न पाई हुई पराजित
कुफ्र तोड़ने की, क्रूसेडों की तल्वारें
वहाँ विश्व जय हुई प्यार के एक घूंट से।

इस प्रकार 'नाश और निर्माण' की कविताओं में हमें कवि माथुर की व्यापक दृष्टि का परिचय भी मिलता है और हम देखते हैं कि उन्होंने ऐतिहासिक संदर्भों को आधुनिक यथार्थ जीवन की अनिवार्यता के रूप में अंकित किया है। साथ ही अनुभूति की गहराई और परिष्कृत सौन्दर्य दृष्टि के कारण इन कविताओं में नवीनता प्रायः प्रत्येक स्थान में परिलक्षित होती है। इसी-

लिए 'नाश और निर्माण' की कविताओं में शिल्पगत नवीनता के भी दर्शन होते हैं और कवि ने बहुधा नवीन उपमानों का ही प्रयोग किया है। जैसे—

अब ये बसंत,
कितने सहस्र वर्षों की ममी बना आया,
बेहिस, अवाक,
ये शिशिर सरीखी बादल भरी हवा चलती
रोमाँ की यादें टूट रहीं,
ये मुझे उड़ाती ले जातीं वर्षों पीछे
जाड़ों की संध्या का वह अंतिम प्रहर,
रात, संदली चाँदनी से धीरे रचती जाती,
जब कालिदास की नगरी में
उन गीतों की छाया में मैं भी बैठा था,
पहिली भी—अंतिम बार वही
जग ने जिसको मिटने पर ही है पहिचाना,
वह चित्र न मुझ पर से है उतरा,
उसको ही पूरा करने में,
मुझको भी पूर्ण न होने का वरदान मिला,
मैं चलता जाऊँगा इतिहासों के ऊपर
यद्यपि पाषाण हुआ जाता।

धूप के धान

सन् १९५५ में श्री गिरिजाकुमार माथुर का तीसरा काव्य संग्रह 'धूप के धान' प्रकाशित हुआ और इसे नई कविता की एक श्रेष्ठ उपलब्धि माना गया। इतना ही नहीं कवि माथुर की कविताओं के कटु समीक्षक डॉ० शिव कुमार मिश्र ने भी अपने शोध प्रबन्ध 'नया हिन्दी काव्य' में 'धूप के धान' का परिचय देते हुए यही कहा है 'प्रेम, सौन्दर्य, रंग, रस और रोमान के प्रति आसक्ति यहाँ भी है तथा आशावादिता, मानवजीवन और भविष्य के प्रति उसका अखंड विश्वास तथा सामाजिक चेतना की प्रखर अनुभूति भी, परन्तु

यहाँ इन सबके समन्वित रूप के दर्शन अधिक होते हैं। कवि का अनुभव क्षेत्र यहाँ विस्तृत है और उसकी दृष्टि भी व्यापक। उसके स्वरों में भी पिछले आक्रोश और तिक्तता के स्थान पर संयम और दृढ़ता है—लगता है जैसे कवि अपने टिकने के लिए एक समतल भूमि पा गया हो।'

वस्तुतः धूप के धान में निम्नलिखित पैंतालीस कविताएँ हैं—१. नयी भारती, २. भोरः एक लैंड स्केप, ३. लैंड स्केप, ४. युगारम्भ, ५ एशिया का जागरण, ६. पहिये, ७. प्रौढ़ रोमांस, ८. शाम की धूप, ९. दो चित्र, १०. महाकवि, ११. पन्द्रह अगस्त, १२. सावन के बादल, १३. नयी दीवाली, १४. सायंकाल, १५. बरफ का चिराग, १६. आग और फूल, १७. रात हेमन्त की, १८. धूप का ऊन, १९. मुहूर्त ज्वलित श्रेयो, २०. न्यूयार्क की एक शाम, २१. मैनहैटन, २२. न्यूयार्क में फाल, २३. चाँदनी गरबा, २४. सिन्धु तट की रात, २५. दिवालोक का यात्री, २६. याज्ञवल्क्य और गार्गी, २७. नये साल की साँझ, २८. मिट्टी के सितारे, २९. तीन ऋतु चित्र, ३०. पूरब की किरन, ३१. पृथ्वी प्रियतम, ३२. रात है, ३३. तैंतीसवीं वर्षगाँठ, ३४. चन्दरिमा, ३५. ढाकवनी, ३६. ऑटोग्राफ, ३७. गीत, ३८. देह की आवाज, ३९. सावन की रात, ४० हेमन्ती पूनो, ४१. चरित्र की केसर, ४२. इतिहास, ४३. नींव रखने वालों का गीत, ४४. इन्दुमती और ४५. धरादीप। साथ ही इस काव्य संकलन में 'निवेदनम्' शीर्षक से लगभग नौ पृष्ठों की भूमिका भी कवि ने प्रस्तुत की है और उसने अपनी इस भूमिका के प्रारंभिक अंश में यही कहा है—

प्रस्तुत कविता संग्रह पिछले नौ-दस वर्षों की मेरी चुनी हुई रचनाओं का कलन है। इन वर्षों में हिन्दी की नयी कविता पनपी और बढ़ी है, उसका सुकुमार पौधा अनजानी और अपरिचित मिट्टियों से रस लेकर बलवत्तर हुआ है, उसकी शाखाएँ फैली हैं और काव्यक्षेत्र में अब वह गरिमा तथा प्रतिष्ठा की ओर अग्रसर होगा ऐसा निश्चित है। हर नयी चीज की तरह हमारी नयी कविता के सम्मुख भी गम्भीर समस्याएँ रही हैं। नये कवि ने साहस के साथ उनका सामना किया है और अपने यत्नों में वह अन्ततः सफल होगा यह हमारा विश्वास है। यदि उसमें यह शक्ति न होती तो उसके

ये यह प्रयत्न एकांकी और एकांतिक रहकर कभी के समाप्त हो गये होते। यह नयी कविता के उज्ज्वल और जीवन्त पक्ष का ही प्रमाण है।

इतना होते हुए भी लोगों को नयी कविता से शिकायत है। और यह कोई अचरज की बात नहीं है क्योंकि मैं समझता हूँ हर युग में नवीन के प्रति इस प्रकार की शिकायतें रहा करती हैं। स्वयं कालिदास और भवभूति जैसे महान् कृतिकारों को जो अपने युग के लिए एकदम नये और विद्रोही थे ऐसे विरोध से आक्रान्त होकर कहना पड़ा था—

पुराणमित्येव न साधु सर्वं
न चापि काव्यं नवमित्यवद्यम्।

—कालिदास

ये नाम किंचिदिह नः प्रथयन्त्यवज्ञां
कुर्वन्तु ते किमपि तान् प्रति नैष यत्नः।
उत्पत्स्यते हि मम कोऽपि समान धर्मा,
कालो ह्ययं निरवधिर्विपुला च पृथ्वी।

—भवभूति

पर ज्ञान-विज्ञान के इस जमाने में जबकि हर क्षेत्र में विशेषीकरण है इन शिकायतों ने भी विशेष का जामा पहन लिया है।' इन पंक्तियों के पश्चात् कवि माथुर ने छायावादी एवं प्रगतिशील कविता की न्यूनताओं का संक्षेप में उल्लेख करते हुए प्रयोगशील कविता का परिचय दिया है और नयी कविता की आवश्यकता पर जोर देते हुए नयी कविता का स्वरूप निर्धारण किया है। माथुर जी ने यह स्वीकार किया है कि नयी कविता अब तक एकांगी ही रही है। इस सम्बन्ध में उन्होंने कारण भी प्रस्तुत किए हैं तथा उनका यह भी कहना है कि 'नयी कविता की ओट में ऐसे कुछ खोटे सिक्के भी आज चलाये जा रहे हैं लेकिन समय बहुत शीघ्र उन्हें कूड़े के ढेर में फेंक देगा। यदि नये कृतिकार को काव्य साहित्य में अपना गम्भीर योगदान देना है तो इन कमजोरियों से ऊपर उठना होगा।' साथ ही गिरिजाकुमार जी ने नये कवि को सम्बोधित कर यह भी कहा है कि 'नये कवि को अपेक्षित है कि इस भ्रम-

जाल के चेहरे पर पड़ी नकाब, उतारकर देखे, दृष्टिभेद न होने दे और उसे छोड़कर अनास्था से आस्था की ओर बढ़े।' अतएव उनका यही कहना है कि 'नयी कविता की इन कमजोरियों से परिचित होते हुए भी हम उसके भविष्य से आश्वस्त हैं। उसकी तात्कालिक उपलब्धि हमें यह देखकर चाहे असन्तोष हो कि उसमें जो कुछ लिखा गया है उसका एक भाग ऊलजलूल और निरर्थक है, किन्तु उसके प्रेरक सिद्धान्त, नवीन लक्ष्यों की ईमानदारी और श्रेष्ठता अप्रतिम और बेजोड़ है।'

इस प्रकार 'धूप के धान' की अपनी प्रस्तावना में कवि माथुर ने लगभग साढ़े सात पृष्ठों में नयी कविता की समस्याओं एवं समाधान-दिशाओं का उल्लेख करने के पश्चात् इस काव्यकृति के सम्बन्ध में कहा है 'प्रस्तुत कविता संग्रह का यह दावा तो नहीं है कि नयी काव्यधारा का वही एकमात्र सफल उदाहरण है, उसका इतना निवेदन अवश्य है कि उसके कवि ने नयी धाराओं —शैलियों—के स्वस्थ तत्वों का समन्वय करने की अथक चेष्टा की है।' साथ ही कवि माथुर 'धूप के धान' में संगृहीत कविताओं का वर्गीकरण करते हुए यही कहते हैं। इस पुस्तक की रचनाओं के तीन मुख्य विभागों में रखकर देखा जा सकता है। एक तो रूमानी गीतात्मकता, दूसरे यथार्थ और रूमान का समन्वय, तीसरे मानववादी बहिर्मुख भावधारा।'

कवि के उक्त दृष्टिकोण को ध्यान में रखकर हम धूप के धान में संकलित कविताओं को उक्त तीन वर्गों में विभाजित कर सकते हैं पर विचारपूर्वक देखा जाय तो 'धूप के धान' में मानववादी बहिर्मुख भावधारा का स्वर ही प्रबल रूप से है और डा० इन्द्रनाथ मदान ने तो स्पष्ट रूप से कहा है, '.... धूप के धान में कवि पहली बार एशिया की जाग्रत आत्मा को अभिव्यक्ति देते हैं।' इसी प्रकार श्री विश्वम्भर मानव का कहना है कि 'धूप के धान में पहली बार गिरिजाकुमार माथुर ने समस्त एशिया को अखण्ड रूप में देखा है और उसकी आत्मा को अभिव्यक्ति दी है। यहीं तक नहीं, बल्कि जैसे छायावादी कवियों में सुमित्रानन्दन पन्त ने विश्वव्यापी समस्याओं का अपने ढंग से समाधान किया है, वैसे ही प्रयोगवादी कवियों में इन्होंने उन्हें उठाया

है। इस प्रकार, ये एक ऐसे व्यापक सम्पन्न कवि हैं जिसकी चेतना की परिधि अत्यन्त विस्तृत है। ऐसी रचनाओं में इतिहास के सत्य और काव्य की कल्पना का अद्भुत सम्मिश्रण हुआ है।' इस कथन की पुष्टि में हम यहाँ कवि माथुर की कविता 'एशिया का जागरण' की कुछ पंक्तियाँ उद्धृत करना आवश्यक समझते हैं; देखिए—

अंगार बन गया आदि पूर्व सदियों का धुँधला जम्बुद्वीप
श्यामल कृतान्तजा धरा उठी लेकर जीवन का अग्नि द्वीप

× × ×

जन अम्बुधि की यह एक लहर आसन्न क्रांति की दूत हुई
लो महाशक्ति युग जीवन की जनजीवन में सम्भूत हुई।
देशों से उठ आया निनाद अंतिम विराट् जनसंगर का
हो एक प्राण हो एक चरण हो एक दिशा जनता निकली
इतिहास सूर्य के अश्व मुड़े युग जीवन ने करवट बदली।
नयनों में अग्नि शिखाएँ हैं मुख पर मानवता का चन्दन
जनता जनार्दन आज बढ़ी करने आजादी का वन्दन।

+ + ×

जब विश्व सभ्यता नव शिशु थी तब मेरे दर्शन चाँद खिले
आदर्श महान् मनुजता के ब्रह्माण्ड सृष्टि के भेद खुले
मेरे उजले घर में आया तू अँधियारी का जाला
तूने डस लिया अजाने ही मेरे द्वीपों का उजयाला।

+ + ×

ए हिम के झंझावात जमीं तुझमें जीवन की गंगाएँ
गल गयीं सुनहली फसलों सी सदियों की पकी सभ्यताएँ
छाया वर्षों की सीलन में खूनी मकड़े जैसा प्रसार
गोधूलि धुँध में डूब गया एशिया, ज्योति का सिंहद्वार

+ + ×

ओ मनुज दासता के प्रहरी वह देख दुर्ग जलता तेरा
धू धू जलते हैं अस्त्र-शस्त्र जलकर गिरता जंगी घेरा

मुड़ गये समय के चपल चरण आया कृतांत बन मुक्ति काल
मिट्टी का हर कन सुलग उठा जल उठी एशिया की मशाल।

सत्य तो यह है कि 'धूप के धान' में कवि माथुर की मानवतावादी भावधारा के ही प्रत्यक्ष दर्शन होते हैं और माथुर जी का मानवतावाद ही उनकी अनेक कविताओं में प्राणतत्व बनकर न केवल उन्हें निखार सका अपितु अक्षय कीर्ति भी प्रदान कर सका। इस दृष्टि से 'धूप के धान' की पहिये, आग और फूल धरा दीप, तथा नींव रखनेवालों का गीत आदि कविताएँ विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। स्वयं कवि माथुर का तो यही विश्वास है कि—

इसलिए कि रुकता नहीं कभी गति का पहिया
अविरल चलता विकास का क्रम
वह पास लिये आता है मनुज समाज नया
जब दुख की सत्ता मर जायेगी
पीले बासी फूलों-सी।

अपनी कुछ कविताओं में माथुर जी ने मध्यकालीन विचारधारा का विरोध भी किया है जिसके अनुसार शरीर को हेय दृष्टि से देखा जाता था। पर शरीर को महत्ता प्रदान करनेवाली ऐसी कविताएँ आधुनिक विचारजगत में एक महत्वपूर्ण युग का सूत्रपात करनेवाली हैं। साथ ही कवि माथुर ने 'धूप के धान' की कुछ कविताओं में मध्य वर्ग का भी बहुत ही स्पष्ट रूप से चित्रण किया है और उन्होंने जीवन की मिठास तथा कड़ुवाहट दोनों का ही सफल अंकन किया है। इतना अवश्य है कि यथार्थ की रक्षा के हेतु जीवन की न्यूनताओं और अपूर्ण आकांक्षाओं की चर्चा करते हुए भी कवि माथुर का मूलस्वर आस्था का ही रहा है। इस प्रकार माथुर जी का यही कहना है—

वह भूमि किन्तु न मिट सकी
आगत फसल की राह में
वह फूल मुरझाया नहीं
ऋतु रंग लाने के अमर विश्वास में
वह आग की पीली शिखा

उठती रही जलती रही
आलोक कन तम से बचा
वह अग्नि बीजों को सतत बोती रही
फिर से नया सूरज उगाने के लिए।

वस्तुतः कवि माथुर की कविताओं में हमें बहुधा नूतन भाव बोध के ही दर्शन होते हैं और समान विषयों में लिखी गयी उनकी कविताओं में भी हमें नवीनता ही दीख पड़ती है। इस दृष्टि से 'धूप के धान' की 'पन्द्रह अगस्त' कविता उल्लेखनीय है और कवि को देश की स्वतन्त्रता की प्रसन्नता से अधिक चिंता नव निर्माण की है तथा वह यही अनुभव करता है कि अब आजादी के कारण हम सब देशवासियों पर एक नवीन दायित्व आ पड़ा है। इसीलिए कवि कहता है कि—

आज जीत की रात
पहरुए, सावधान रहना
खुले देश के द्वार
अचल दीपक समान रहना

+ + + +

शत्रु हट गया, लेकिन उसकी
छायाओं का डर है
शोषण से मृत है समाज
कमजोर हमारा घर है।
किन्तु आ रही नयी जिन्दगी
यह विश्वास अमर है।

अतएव सम्पूर्ण कविता में कठिन उत्तरदायित्व का भाव ही ओतप्रोत है और कवि माथुर ने 'धूप के धान' में संगृहीत 'दो चित्र' कविता में भी अपना यह मत प्रकट किया है कि चाहे पूर्व हो या पश्चिम, धरती के दोनों छोरों पर अनेक श्रेष्ठ महापुरुष अवतरित होते रहे हैं और होते रहेंगे। इस प्रकार कवि पश्चिम के महापुरुषों के बलिदान के सम्बन्ध में श्रद्धावनत भाव से अपने विचार प्रकट करते हुए कहता है—

इसलिए कि जो इन्सान चढ़ा था सूली पर
वह जिंदा होता जाता है इन्सानों में

और पूरब के सम्बन्ध में उसका विचार है कि—

इसलिए कि जो इन्सान मिला था मिट्टी में
वह मिट्टी का तूफान उठाता आता है।

विचारपूर्वक देखा जाय तो 'धूप के धान' में सर्वाधिक संख्या प्रकृति सम्बन्धी कविताओं की है और अपनी इन कविताओं में माथुर जी ने अपने देश की ही नहीं, विदेश की प्रकृति के सौन्दर्य को भी अंकित किया है और सौन्दर्य का यह चित्रण मन को कोमलता की भावना से पूर्ण कर देता है। इसमें कोई संदेह नहीं कि कवि माथुर वातावरण का चित्रण बड़ी पटुता और सूक्ष्मता से करते हैं तथा ऐसे स्थलों पर परिस्थिति के अनुसार रूप, रंग, गंध और स्पर्श की चेतनाओं को धीरे-धीरे उभारते चलते हैं। उदाहरणार्थ, सिन्धु तट की रात कविता की कुछ पंक्तियाँ दर्शनीय हैं—

साँझ की सुधि में
हँसी सी आ गयी होगी
बर्फ की पहली रुई भी
छा गयी होगी
बाँह पर उड़ता
गले का रेशमी रूमाल
द्वीप पर आकर लहर
छितरा गयी होगी
चाँद के संग दूर की
वह रात आती है
चाँदनी हल्के कुहर के
साथ आती है

जहाँ शुद्ध प्रकृति के वर्णन नहीं हैं, वहाँ कवि माथुर ने प्रकृति को अन्य भावनाओं की तुष्टि के लिए चुना है और प्राकृतिक वस्तुओं पर कहीं-कहीं

नारी भावना या उसके विविध अंगों का आरोप भी हुआ है तथा प्रसंगानुसार चुम्बन, आलिंगन, छुवन या मसलन की चर्चा भी हुई है। इसी प्रकार कहीं-कहीं प्रकृति और जीवन का मिला जुला वर्णन भी कवि माथुर ने किया है और प्रकृति चित्रण के अत्यन्त रम्य भाव खण्ड के साथ ही कवि मानस का व्यापक असंतोष या नूतन रचना की आशावादिता आदि भाव भी प्रसंगानुसार अत्यंत आकर्षक ढंग से व्यक्त हुए हैं। इस दृष्टि से 'धूप के धान' की 'ढाकवनी' कविता विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं और उसकी कुछ पंक्तियाँ यहाँ उद्‌धृत की जा रही हैं—

सन सनाती साँझ सूनी, वायु का कठला खनकता
झींगुरों की खंजड़ी पर झाँझ सा बीहड़ झनकता
कंटकित बेरी करोंदे महकते हैं झाब झोरे
सुन्न हैं सागौन वन के कान जैसे पात चौड़े

\+ + + +

हल कि जिसकी नोंक से बेजान मिट्टी झूम उठती
सभ्यता का चाँद खिलता जंगलों की रात मिटती

\+ + + +

रंग मिट्टी का बदलता नीर का सब पाप घुलता
हरे होते पोत ऊसर स्वस्थ हो जाती मनुजता

उक्त उद्धरण में हमें कवि का प्रकृति विषयक नवीन दृष्टिकोण ही दीख पड़ता है और हम देखते हैं कि कवि ने जहाँ कि प्रथम आठ पंक्तियों में प्रकृति का अत्यंत सजीव चित्रण किया है वहाँ वह शेष आठ पंक्तियों में नव निर्माण के लिए आकुल भी जान पड़ता है। इसी प्रकार अपनी पूर्ववर्ती कृतियों के सदृश्य कवि माथुर ने 'धूप के धान' में भी रोमांस का चित्रण किया है पर इस काव्य संग्रह की कविताओं में प्रेमिका का सीधा सम्बोधन कम ही है और रोमांस की वृत्ति तो स्मृति रूप में उभरी है या फिर ऋतु वर्णन में। उदाहरणार्थ—

नयन लालिम स्नेह दीपित
भुज मिलन तन गंध सुरभित

उस नुकीले वक्ष की
वह छुवन, उकसन, चुभन अलसित
इस अगरु सुधि से सलोनी हो गयी है
रात यह हेमन्त की

कहीं-कहीं रोमान और यथार्थ का समन्वय भी उपस्थित किया गया है पर इस समन्वय में बहुधा यथार्थ से अधिक रोमान ही उभर उठा है लेकिन 'धूप के धान' में संगृहीत कविताओं में निराशा, घुटन और वेदना के चित्र विरल ही हैं तथा उनसे उत्पन्न थकान, ऊब, सूनेपन और आलस्य के चित्र ही शेष रह गये हैं : जैसे—

द्विविधा हत साहस है, दिखता है पंथ नहीं
देह सुखी हो पर मन के दुख का अन्त नहीं
दुख है न चाँद खिला, शरत रात आने पर
क्या हुआ, जो खिला फूल, रस बसंत जाने पर

सत्य तो यह है कि कवि अब वैयक्तिक अनुभूतियों से ऊपर उठकर अधिकाधिक सामाजिक बनता जा रहा है और उसने 'प्रौढ़ रोमांस' कविता में इस तथ्य का भी अनुभव किया है कि मन के संघर्षों से बाहर के संघर्ष अधिक बोझिल हैं ; देखिए—

हमने भी सोचा था पहले
इस जीवन में
सबसे अधिक मूल्य होता कोमल भावों का
पर ठोकर पर ठोकर खाकर हमने जाना
तोल तराजू के पलड़ों में
मन के संघर्षों से बाहर के संघर्ष
अधिक बोझल हैं
और हृदय की कलियाँ खिलती देखीं
रुपयों की पूनों में
और प्यार के चाँद बुझ गये
जीवन की सड़कों पर आकर

'धूप के धान' में कवि माथुर ने 'महाकवि' शीर्षक से एक कविता युग प्रवर्तक कवि निराला जी के प्रति भी लिखी है पर इस कविता को साधारण प्रशंसामूलक रचनाओं की कोटि में रखना समीचीन न होगा। यहाँ यह स्मरणीय है कि महाप्राण निराला और कवि माथुर का लखनऊ में घनिष्ठ परिचय अंकुरित, विकसित एवं पल्लवित हुआ था और वर्षों तक दोनों का सम्बन्ध रहा। साथ ही कवि माथुर के प्रथम काव्य संग्रह 'मंजीर' की भूमिका भी निराला जी ने लिखी और स्वयं माथुर जी निराला की काव्यकला की तुलना गर्वपूर्वक कुछ श्रेष्ठ विदेशी कवियों से किया करते थे तथा निराला की प्रसिद्ध कविता राम की शक्तिपूजा को छायावाद की अन्यतम उपलब्धि मानते हुए कहते थे 'सारा छायावादी काव्य निरालाजी की इस एक रचना के बिना हलका और फीका है।' अतएव कवि माथुर का निराला के प्रति कविता लिखना स्वाभाविक ही कहा जाएगा पर उनकी यह रचना भी सर्वथा अनूठी और भावगांभीर्य से युक्त है तथा उसमें महाप्राण निराला के प्रदेय की झांकी अत्यंत भावपूर्ण ढंग से प्रस्तुत की गयी है। अपने कथन की पुष्टि में हम यहाँ महाकवि कविता की कुछ पंक्तियाँ उद्धृत कर रहे हैं—

ओ शक्ति दूत, युग के विद्रोही कलाकार
तुम बढ़े रूढ़िगत भावों की प्राचीर तोड़
भीषण अवरोधों की चट्टानों के ऊपर
निर्माण पथ बन गया और पद चिह्नों से
इन नयी मुक्त सीमाओं पर निर्बाध बही
युग की पुंजित गति-सी कविता की भगीरथी
कर मन्त्रमुग्ध अनुसरण तुम्हारे चरणों का
कवि अम्बु, तुम्हारी स्वर डोरी का संबल ले
नव मानवता आ गयी क्रांति के सिंह द्वार
निज काले कर्मों से था जो पंकिल समाज
जिसके पापों से संतापित तुम रहे
किन्तु, जिन क्रूर शक्तियों से तुम जूझे जीवन भर

उन महलों के दीपक अब बुझते जाते हैं
गिरता है उस समाज का अब विक्षत खँडहर।

भावपक्ष के सदृश्य 'धूप के धान' की कविताओं का कलापक्ष भी पूर्ण सक्षम और समृद्ध है तथा डा० कैलाश वाजपेयी के कथनानुसार 'शिल्प की दृष्टि से धूप के धान की रचनाएँ और भी सशक्त हैं—बिम्बों के ऐसे अनेक प्रकार, जो अब तक हिन्दी कविता में पहले कभी नहीं प्रयुक्त हुए थे, पहली बार इस संग्रह की रचनाओं के माध्यम से हिन्दी कविता में आयें।' सत्य तो यह है कि कला की दृष्टि से इस काव्य संग्रह की रचनाओं का अध्ययन करते समय यह स्पष्ट आभासित होता है कि काव्य की सभी दिशाओं में एक नवीन युग अवतरित हुआ है। यह हम मानते हैं कि धूप के धान की कुछ कविताओं मे विकृत शब्दों का प्रयोग हुआ है और ऊगैं, पै, थिर, दिखता, उजल, चाँदिनि, चँदरिया जैसे कई शब्दों का कवि माथुर ने निस्संकोच प्रयोग किया है पर विचारपूर्वक देखा जाय तो अधिकांश कविताएँ कोमल और श्रुति-सुखद शब्दों से युक्त जान पड़ती हैं। साथ ही उन्होंने बहुत से नवीन प्रतीकों, उपमाओं, रूपकों और शब्द चित्रों का प्रयोग किया है तथा जब वह विशेष रूप से किसी विशेषण का प्रयोग करते हैं तब अभिव्यक्ति में एक प्रकार की अतिरिक्त चमक आ जाती है। यहाँ यह स्मरणीय है कि डा० रामस्वरूप चतुर्वेदी ने हिन्दी नवलेखन' नामक कृति में 'धूप के धान' की कविताओं को शिल्प और संवेदना की दृष्टि से विशेष महत्व की माना है तथा भाषा, छन्द, लय, संगीतात्मकता एवम् नूतन उपमानों की योजना आदि विशेषताओं की दृष्टि से इस काव्य संग्रह की कई कविताएँ उल्लेखनीय हैं। उदाहरणार्थ—

चल पड़ी तेज हवा
बदल गया मौसम
आ गयी धूप में कुछ गरमाई
बढ़ गया दिन का उजेला रस्ता
जिसपै सूरज के चमकते पहिये
शाम को देर तक चले जाते

स्वयं कवि माथुर ने 'धूप के धान' के 'निवेदन' में यह संकेत किया है

कि उन्होंने अपनी इस काव्यकृति में उपमान, रंग योजना और ध्वनि संगीत के सम्बन्ध में नवीन प्रयोग किये हैं। साथ ही उनका यह भी कहना है कि पिछले कविता संग्रह 'नाश और निर्माण' में सवैये को तोड़कर एक मुक्त छन्द निर्मित किया था, प्रस्तुत संग्रह की तीन रचनाओं में नये छन्दों का फिर निर्माण किया गया है। 'शाम की धूप' में उर्दू की छोटी बहर (यथा—नींद क्यों रात भर नहीं आती) को तोड़कर उसके कालमान और लय के आधार पर नया मुक्त छन्द रचा है। इसी प्रकार 'नये साल की साँझ' का छन्द भी गजल के काल मान पर लिखा गया है। 'चाँदनी गरबा' का छन्द एक गुजराती लोक-गीत से लिया है जिसे गरबा नृत्य के समय गाया जाता है—(आशो माशे शरद पुनमनी रात जे, चाँद लिया ऊग्यो रे सखी म्हारा चौक माँ)

'न्यूयार्क में फॉल' संग्रह की एक विशेष रचना है जिसमें आधुनिक वस्तु प्रतीकों का नया उपयोग है। शैली शिल्प की दृष्टि से याज्ञवल्क्य और गार्गी एकालाप उल्लेख्य है। ऐसे मोनोलॉग का उपयोग हिन्दी कविता में बहुत कम हुआ है। प्रयोग के इस वर्ग में 'चन्दरिमा' भी आती है जो प्रभाववादी खण्ड बिम्ब है। सिन्धु तट की रात और हेमन्ती पूनो में छन्द और शब्द योजना की संक्षेप शैली (ब्रेविटी) दृष्टव्य है। ढाक बनी में जहाँ एक ओर वातावरण निर्माण के लिए जनपदीय (बुंदेलखण्ड) उपमान, प्रतीक और शब्द योजना का आधार लिया गया है वहाँ दूसरी ओर समाज यथार्थ (सोशल रियलिज्म) के शिल्प का प्रथम बार उपयोग किया गया है।

इन कतिपय रचनाओं का उल्लेख केवल उदाहरणार्थ किया गया है। संग्रह की अन्य समस्त रचनाओं का अपना विशिष्ट व्यक्तित्व है, जिनमें प्रयोगों के साथ सामाजिक वस्तु के सामंजस्य का यत्न मिलेगा और आगत फसल की अनिमेष प्रतीक्षा।' कवि माथुर के इन विनम्र शब्दों से यही स्पष्ट होता है कि उन्होंने 'धूप के धान' में शिल्प सम्बन्धी अनेक नवीन प्रयोग किए हैं और 'धूप के धान' में संकलित कविताओं का अध्ययन कर यह तथ्य प्रमाणित भी हो जाता है। हम यहाँ यह स्पष्ट कर देना भी उचित समझते हैं

कि 'धूप के धान' में कवि माथुर ने मुक्त छन्द के साथ-साथ कुछ सुमधुर गीत भी प्रस्तुत किये हैं और श्री विश्वम्भर 'मानव' का तो यही कहना है कि 'मेरी व्यक्तिगत धारणा है कि गिरिजाकुमार मुक्त छन्द की अपेक्षा गीत अधिक सफलतापूर्वक लिख सकते हैं।' अनुपम भाव सौन्दर्य एवं विशिष्ट शिल्प से युक्त एक गीत यहाँ उद्धृत है—

नैन हुए रतनार गुलाब से अंग खिले कचनार कली से
फूले पलाश सो
पूनम आयी
चाँद के अंग में
रैन समायी
कुन्द कपोलों पै
फैली ललाई
केसर चुम्बन से हुए रंजित अलसित तन चिकने बदली से
कर में मसल गये
फूलों के कंगन
रंजित तन पै
मसल गये फागुन
उभरे लिपट कर
चीर सुहावन
छिटकी चमेली सी भुज बन्धनों में चमके नयन हँसती बिजली से

शिला पंख चमकीले

सन् १९६१ में श्री गिरिजाकुमार माथुर का चौथा काव्य संग्रह 'शिला पंख चमकीले' प्रकाशित हुआ और इसमें कवि माथुर की निम्नलिखित चौंतीस कविताएँ संकलित हैं—१. सूरज का पहिया, २. दियाधरी, ३. माटी और मेघ, ४. समय की मिट्टी, ५. अक्स जो नहीं उतरा, ६. रात फुटपाथ और गीत, ७ प्रकाश की प्रतीक्षा, ८. क्रानिक मरीज, ९. खत, १०. लौह मकड़ी का जाल, ११. तूफान एक्सप्रेस की रात, १२. पत्ते की लकीरें और

इतिहास, १३. चन्द्र खण्डों की आत्मा, १४ अंध शिलाओं की दुनियाँ, १५. कहीं, कोई नहीं, १६. जूड़े के फूल, १६. संभवों की दुनियाँ, १८. अनकही बात, १९. बसंत, एक प्रगीत स्थिति, २०. भूले हुओं का गीत, २१. हब्श देश, २२. या निशा सर्वभूतानां, २३. आदमी का अनुपात, २४. चार पंक्तियाँ, २५. प्रयोग का प्रयोग, २६. नया नगर, २७ पुरुषमेघ, २८. दो दुनियाँ, २९. चिरंतन विद्रोही, ३७. खटमिट्ठी चाँदनी, ३१. व्यक्तित्व का मध्यान्तर ३२. विश्वास की साँझ, ३३. नई आग की खोज और ३४. नया द्रष्टा कवि ।

इस काव्य संग्रह के प्रारम्भ में 'प्रक्रिया' शीर्षक से लगभग अढ़ाई पृष्ठों की प्रस्तावना भी है पर यह प्रस्तावना 'धूप के धान' में दिये गये कवि माथुर के 'निवेदनम्' से सर्वथा विभिन्न ही है। वस्तुतः 'धूप के धान' का 'निवेदनम्' लगभग नव पृष्ठों का है और उसमें कवि माथुर ने नयी कविता की आवश्यकता एवं उसके समाधान का भी विस्तृत विश्लेषण किया है पर अब कवि को नयी कविता की समस्याओ एवं समाधान-दिशाओं का उल्लेख करने की कोई आवश्यकता नहीं रही क्योंकि सन् १९६० तक नयी कविता अपना स्थान निर्धारित कर चुकी थी। इस प्रकार १९६१ में प्रकाशित अपने कविता संग्रह 'शिला पख चमकीले' में कवि माथुर को किसी लम्बी चौड़ी भूमिका की आवश्यकता प्रतीत नहीं हुई और उन्होंने 'प्रक्रिया' शीर्षक से अढ़ाई पृष्ठों में अपने गद्य काव्यात्मक उद्‌गार ही व्यक्त किये हैं। इसमें कोई संदेह नहीं कि यह 'प्रक्रिया' शीर्षक भी एक विशिष्ट अर्थ रखता है और इसमें कवि ने प्रारम्भ में यही कहा है—

'चमकीले पंखों वाली शिलाएँ।'

विराट् शिलाएँ जो चमकदार पंख फैला कर उड़ जाती हैं।

शिलाएँ जो वास्तविकताओं सी कठोर और भावनाओं सी गहन हैं। जो दीप्तिमान हैं और सूक्ष्म में तैर जाती हैं। वही तो चारों ओर दिखती है।

अनुभूति के अर्धव्यक्त धरातल से उठकर अचीन्हें संकेत बिम्ब सी समाई रहती हैं फिर अज्ञात उपलब्धि के रूप में चमक कर उतरती हैं जैसे

मोर पंख गिर जाते हैं। भावना और यथार्थ, वास्तविकता और फेन्टेसी, स्वीकृति और जिज्ञासा, आस्था और निःशेष तिलांजलि आज कितने संयुक्त हैं, अविभाज्य हैं। संक्रान्तियों में डूबी दुनिया के बीच नई संवेदना के उदय की यह संधि बेला है।' इस प्रकार कवि ने नई कविता के उद्‌भव को स्वाभाविक मानते हुए संकेत किया है कि साहित्य-जगत में संक्रांतिपूर्ण अवस्था के कारण ही नई संवेदना की आवश्यकता प्रतीत हुई और शनैः शनैः नई कविता का उद्‌भव एवं विकास हुआ।

'शिला पंख चमकीले' की इस संक्षिप्त भूमिका में कवि ने मानव का भी विश्लेषण किया है और वह नई कविता के उद्‌भव को सत्य मानता है तथा विरोधियों के तर्कों को मिथ्या कहकर प्रत्यक्ष के लिए प्रमाण की आवश्यकता अनुभव नहीं करता और जो प्रमाण के लिए आतुर जान पड़ते हैं उन पर व्यंग्य करते हुए कहता है 'चारों तरफ स्वरूपहीन भीड़ें, अपार भीड़ें है और भीड़ों का व्यक्ति निरपेक्ष, वस्तु निरपेक्ष अमूर्त संकल्प है। समूह का अनुकरण जन्य, प्रतिश्रुति मानस है और अंधा सत्य है। अनेक शक्ति, स्वार्थ, भय और आकांक्षा से उत्प्रेरित भीड़ों के लक्ष लक्ष कुण्ड हैं जो विपरीत दिशाओं में समाती हुई सड़कों पर समवेत भागते चले जा रहे हैं, जैसे किसी अज्ञात बिजली का यक्षाकार कोड़ा उन पर पड़ गया हो। यह मानवीय विशेषता से युक्त जन नहीं हैं। यह निर्गुण जनता है। एक वायवी शब्द मात्र है जिसकी अनेक विरोधी परिभाषाएँ हैं। क्योंकि कोई सर्वमान्य सार्वजनीन सत्य अब नहीं रह गया है। सत्य आज क्षेत्रीय, स्थिति सापेक्ष्य, समानान्तर (Parallel Truth) हो गया है, मसलहत (Expediency) बन गया है।'

नूतन प्रयोगों अर्थात नयी कविता का विरोध करने वालों को माथुर जी ने यह भी स्पष्ट कर देना चाहा है कि अब एक मन्वन्तर बीत रहा है और साहित्य जगत में भी नव परिवर्तन की आवश्यकता अनुभव की जा रही है। साथ ही उनका यह भी कहना है कि मनुष्य जब तक अपने दृष्टिकोण में परिवर्तन नहीं करेगा तब तक वह नवीन प्रयोगों की उपादेयता समझने में समर्थ नहीं हो सकता। इस प्रकार 'शिला पंख चमकीले' की 'प्रक्रिया' में माथुर जी अंत में यही कहते हैं—

'काल की विकराल गति से घूमता बिजली का महाकाय चक्रमित पंखा है जिसकी अराएँ—पंखड़ियाँ तीव्र आवर्तन से एकसार हो गई हैं। लगता है कि चक्र ठहर गया है और उसकी एक बिम्ब छाया उल्टी घूमने लगी है। रोमांच होने लगता है सोचकर कि कहीं यह चक्र अपनी कील से न निकल जाय और सहसा उड़कर क्रैश हो जाय। कितनी अभूतपूर्व सम्भावनाएँ हैं और कैसे आत्यंतिक अवरोध। हम ग्रह लोकों के विराट की ओर मुड़ रहे हैं, हम पिशाच हो रहे हैं। चीजों की शक्ल बेहद बदल गई है। आदमी पहिचान में नहीं आ पाता कि यह नव बर्बर आदमी ही है या सामग्री। चरम संक्रमण की पछाड़ में उसका पिघलन सांस्कृतिक रूप टूट फूट कर टुकड़े हो गया है। मूल्यगत प्रतिमा की देह टेढ़ी-मेढ़ी विकलांग हो गयी है। मर्यादा विहीनता की स्थिति में वह अवशिष्ट के अंतिम उन्मत्त भोग में रत है। आगम के आते हुए एकदम नए, अनोखे चेहरे को देखकर वह आशंकित है। एक ओर भयोन्माद है, दूसरी ओर बर्बरता। संस्कृति का यह खाली, अनधिकृत प्रदेश है—नो मैन्स लैन्ड—है—जहाँ पहुँचकर आदमी फिर अर्ध सभ्य हो गया है। पूर्ववर्ती मूल्य सूखे, जीर्ण छिलकों की तरह झर-झरकर गिर गये हैं, और विज्ञान कालीन नए परिधानों का आभास भी नहीं है। कपास में फूल आने की अभी देर है। आदमी आत्मा से इस समय एकदम नंगा है। उसका पिछला सभी कुछ खो गया है, केवल पूर्व स्मृति के महताबी कुहासे में ही आज वह भटक रहा है। इस ऐतिहासिक स्मृति की खुमारी टूटने के बाद ही वह नए वैज्ञानिक मूल्यों को ग्रहण करने योग्य बनेगा।'

कवि माथुर के उक्त विचारों से स्पष्ट हो जाता है कि 'शिला पंख चमकीले' में संकलित उनकी कविताओं में नवीन भावभूमि एवं नूतन शिल्प की ही योजना होगी और समीक्षक इस काव्यकृति के सम्बन्ध में यही मत प्रकट करते हैं। 'शिला पंख चमकीले' में जहाँ एक ओर खट मिट्ठी चाँदनी जैसी लघु प्रगीत रचनाएँ हैं, वहीं दूसरी ओर हब्श देश जैसी उदात्त शैली में लिखी लम्बी ऐतिहासिक कविताएँ भी। जहाँ एक ओर क्रानिक मरीज में कवि का दृष्टिकोण अत्यंत तीखा और व्यंग्ययुक्त हो गया है, वहीं संघर्ष और विफलताओं से भरी 'व्यक्तित्व का मध्यान्तर' जैसी रचानाएँ भी हैं। जिनमें न

केवल नई संवेदना का अनुभव होता है, बल्कि काव्य की नवीनता भी अपना अमिट प्रभाव छोड़ जाती है।' इस कथन की पुष्टि स्वरूप हम 'शिला पंख चमकीले' की प्रथम कविता 'सूरज का पहिया, की कुछ पंक्तियाँ उद्‌धृत कर रहे हैं ; देखिये—

मन में विश्वास
भूमि में ज्यों अंगार रहे
अगरई नजरों में
ज्यों अलोप प्यार रहे
पानी में धरा गंध
रूख में बयार रहे
× × ×
आस्था चमेली पर
न धूरी साँझ घिरे
उम्र महागीत बने
सदियों में गूँज भरे
पाँव में अनीति के मनुष्य कभी झुके नहीं
जीवन की पियरी केसर कभी चुके नहीं

इसमें कोई संदेह नहीं कि कवि माथुर की अन्य पूर्ववर्ती कृतियों के सदृश्य 'शिला पंख चमकीले' में भी हमें विषय वैविध्यता के दर्शन होते हैं और श्री विश्वम्भर मानव ने तो इस काव्य संग्रह को विचार प्रधान मानते हुए यही कहा है 'इसमें भावना के स्थान पर चिंतन का प्राधान्य पाया जाता है। चिंतन का मुख्य विषय है—मनुष्य। कवि की दृष्टि फुटपाथ, कच्चे घरों और बँगलों सभी पर गयी है। वह देखता है कि मनुष्य कहीं दरिद्रता से घिरा है, कहीं अंध विश्वास से, कहीं कृत्रिमता से। वह सृजन भी करता है और विनाश भी। मनुष्य के पतन और उत्थान की सम्भावनाएँ अनन्त हैं। वह दैत्य भी हो सकता है और देवता भी। जिस समय वह ईर्ष्या, अहं और स्वार्थ से घिरा होता है, उस समय वह बहुत छोटा प्रतीत होता है। मनुष्य अपराजेय है।

उसे चाहिए कि वह सम्पूर्ण जीवन का भोक्ता बने। उसका विश्वास है कि भविष्य जन्म लेगा।' इस प्रकार कवि माथुर ने 'क्रानिक मरीज' कविता में आज के अपूर्ण मनुष्य का चित्र अंकित करते हुए लिखा है—

अपने से अच्छों को
देखकर तरसता है
अपने को, औरों को
किस्मत को, कर्मों को
कोसता कलपता है
तुरत मजे के लिए
तुच्छ छुद्र बातों पर
नियत बिगाड़ता है
ओछे बहाने कर
अपने ईमान का
दिवाला निकालता है

'शिला पंख चमकीले' का अनुशीलन करने पर यह भी ज्ञात होता है कि कवि माथुर का झुकाव अब 'वस्तु परक' रचनाओं की ओर अधिक हो चला है और 'धूप के धान' के सदृश्य इस काव्यकृति में भी उनकी व्यापक दृष्टि के दर्शन होते हैं। जिस प्रकार 'धूप के धान' में उनकी दृष्टि एशिया की ओर गयी है उसी प्रकार अब 'शिला पंख चमकीले' में संगृहीत 'हब्श देश' कविता में उन्होंने अफ्रीका महाद्वीप को काव्य विषय बनाया है। वस्तुतः यह इस काव्य संग्रह की सर्वाधिक लम्बी कविता है और इसमें कोई संदेह नहीं कि 'हब्श देश' में पहली बार अफ्रीका को किसी नए कवि ने ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से देखा है। यहाँ इस उल्लेखनीय कविता की कुछ पंक्तियाँ उद्धृत करना असंगत न होगा—

मैं अफ्रीका
मुझ पर दुख के यम की घिरी साँवली छाया
युगों पुरानी गहरी छाया

× × × ×

जिस दिन इस क्वांरी धरती पर
प्रथम मानवी अरुण खिला था
पलक खोलता समय युवा था
तब काली नदियों के तट पर
बीहड़ मैदानों के ऊपर
आदिम नगर उठे थे मेरे

\+ + + +

मौन पिरामिड
मैं रहस्य-गर्भा स्फिक्स हूँ
विश्व सृष्टि की जटिल पहेली
युग युग से मैं
देता आया प्रकृति काल को नित्य चुनौती

\+ + + +

इंसानी जीवन यात्रा की
मैं बन मानस पहिली मंजिल
खींच सृष्टि-रथ बाहर लाया
छोड़ गुरीलों वाला जंगल
टूटी थी इतिहास कड़ी जो
शुरू हुई फिर मुझ पर आकर

इस प्रकार 'हब्श देश' में कवि माथुर ने अफ्रीका के ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक महत्व को प्रकट करते हुए अफ्रीका महाद्वीप के उत्थान पतन की काव्यात्मक कथा अंकित की है और साथ ही नदियों, पर्वतों, जंगलों, पक्षियों, विशिष्ट स्थानों, जातियों, वस्तुओं एवं अद्भुत दृश्यों का विवरण भी दिया है पर रसज्ञ पाठकों का मन ऊबता नहीं है। इसमें कोई संदेह नहीं कि माथुरजी की इस कविता की तुलना 'दूसरा सप्तक' में संगृहीत श्री नरेश मेहता की 'समय देवता' नामक कविता से सरलतापूर्वक की जा सकती है। अपनी इस 'हब्श देश' कविता में माथुर जी ने अन्त में अपना आशावादी दृष्टिकोण ही

प्रकट किया है और उन्हें अफ्रीका की भावी उन्नति का पूर्ण विश्वास भी है तथा वह यही कहते हैं—

इस मिट्टी के द्रव्य, धातु, रस
मनुज, जीव, वन, नद, मरु, पर्वत
में दीपित हैं
उसी अग्नि की व्यापक काया
वही अग्नि खेतों से उठकर
मुक्ति ऊषा बनकर आएगी
वर्ण यंत्रणावाली
लोहे की दीवार पिघल जाएगी

सामान्यतया 'शिला पंख चमकीले' की कविताओं में रोमांस के स्वर नहीं के समान हैं और यथार्थ के प्रति कवि की रुझान होते हुए भी इस काव्य कृति की कविताओं में नग्न यथार्थ का चित्रण कहीं भी नहीं किया गया। निस्संदेह कवि को जीवन की वास्तविकताओं के चित्रण के प्रति विशेष रुचि रही है और उसने 'शिला पंख चमकीले' में भी जीवन एवं जगत की समस्याओं का निरूपण किया है पर अब वह जीवन की इस यथार्थता का ही अनुभव करता है—

उम्र सारी कटी
बिम्ब टुकड़े सँजोते
समय कट गया
हर कदम पर अहं
टूट कर ढह गया
स्वप्न आता रहा
अक्स उतरा नहीं
यत्न पीड़ा यही
जिंदगी बन गई

प्रकृति-प्रेमी कवि माथुर के इस चौथे काव्य संग्रह 'शिला पंख

चमकीले' में प्रकृति वर्णन सम्बन्धी कविताएँ भी हैं और कवि ने न केवल प्रकृति का यथा तथ्य वर्णन किया है अपितु कहीं-कहीं प्रकृति मानव भावनाओं को उद्दीप्त करने में सहायक भी रही है लेकिन पूर्ववर्ती कुछ कविताओं के सदृश्य इस काव्य कृति में प्रकृति भोग विलास का माध्यम नहीं जान पड़ती। अब तो कवि इस काव्य संग्रह में प्रकृति के सम्बन्ध में भी यही दृष्टिकोण रखता है—

> क्या प्रकृति मनुज के हाथ प्रलय बन जाएगी
> पृथ्वी ढेले सी फूट चूर हो जाएगी
> सभ्यता, अनुजता, संस्कृति की इतिहास-राख
> नभ के खोखल में उल्का बन खो जाएगी
> जो बीज धरा ने दिया न वह मुरझा सकता
> माटी का तेज नहीं माटी को खा सकता
> इन्सान करे चाहे जितनी कोशिश लेकिन
> जीवन दीपक की लौ वह नहीं बुझा सकता।

नूतन भावनाओं एवं विचारों से युक्त 'शिलापंख चमकीले' की कविताओं के कलापक्ष में भी नवीनता के दर्शन होते हैं और इस काव्य संग्रह के प्रारम्भ में ही प्रकाशक ने सैंतालिस शब्दों की सूची एवं उनके अर्थ देते हुए कहा है 'प्रस्तुत संग्रह की रचनाओं में कवि ने अपनी पिछली कृतियों की पम्परा को अक्षुण्ण रखते हुए ऐसी शब्दावली दी है जिसमें कुछ तो नए रचे हुए सामयिक शब्द और विशेषण हैं अथवा ऐसे शब्द भी हैं जो कविता के क्षेत्र में प्रथम बार प्रयुक्त किए गए हैं। इस प्रकार 'शिलापंख चमकीले' में कवि माथुर ने अनेक नवीन शब्दों की योजना की है और शिल्प संबंधी कई नवीन प्रयोग भी किए हैं पर अब उनकी रुचि अलंकृत शैली की अपेक्षा सीधी-सादी अभिधाप्रधान शैली की ओर ही जान पड़ती है। इसीलिए एक विचारक ने कहा है कि 'शिलापंख चमकीले' निश्चित रूप से उनके काव्य के उतार का चिन्ह है।' पर हम इस मत से सहमत नहीं है और हमारा तो यही कहना है कि यह काव्यकृति भी कवि माथुर के गौरव में वृद्धि ही करती है।

जो बँध नहीं सका—

सन् १९६८ में श्री गिरिजाकुमार माथुर का पाँचवाँ कविता संग्रह 'जो बँध नहीं सका' प्रकाशित हुआ और इसमें उनकी तिरसठ कविताएँ संकलित हैं। यह काव्य संग्रह इतिहास की पीड़ा, काल दृष्टि और प्रतिबिम्बों की लय नामक तीन खंडों में विभक्त है तथा इनमें से आकार की दृष्टि से तीसरा खण्ड ही बड़ा है क्योंकि उसमें चौंतीस कविताएँ संग्रहीत हैं और दूसरा खंड बहुत छोटा है क्योंकि उसमें केवल छह कविताएँ हैं।

वस्तुत: 'जो बँध नहीं सका' के प्रथम खंड 'इतिहास की पीड़ा' में कवि की निम्नलिखित कविताएँ संकलित हैं—१. दो पाटों की दुनिया, २. सत्य का अपराध, ३. युगबोध, ४. बौनों की दुनिया, ५. इतिहास का सिंहासन, ६. इतिहास का हंस, ७. इतिहास : एक आदिम न्याय, ८. इतिहास : एक बच्चा, ९. इतिहास : विकृत सत्य, १०. इतिहास एक व्यंग्य स्थिति, ११. वर्ष दिन, १२ नया बच्चा, १३. अदृष्ट की प्रतीक्षा, २३. विकलांग जन्मों के बाद, १४. एक प्रार्थना : अष्टग्रह कूट पर, १६. कबन्धों का नाच, १७. पत्तीदार रोशनी का दम्भ, १८. अर्धआधुनिकों की बातचीत, १९. सार्थवाह, २०. भोजपत्र की रेखा, २१. अग्नि की शेष परीक्षा, २२. अन्तिम आत्महत्या और २३. एक सितम्बर १९६६। साथ ही इस काव्यसंग्रह के द्वितीय खंड 'कालदृष्टि' में निम्नलिखित कविताओं को संकलित किया गया है—१. समानान्तर सत्य, २. विमानसी संचरण, ३. समाधि में यात्रा, ४. अशब्दों का नाता, ५. समयातीत क्षण और ६. चलती हुई रील।

जैसा कि पहले ही संकेत किया जा चुका है कि 'जो बँध नहीं सका' का तृतीय खंड 'प्रतिबन्धों की लय' ही आकार में सर्वाधिक बृहत् है और इसमें कवि माथुर की निम्नलिखित कविताएँ हैं—१. गंध लेने लगी आकार, २. रोएँ भर का स्पर्श, ३. वसन्त की पहली शाम, ४. रूप विभ्रमा चादनी, ५. चाँदनी बिखरी हुई, ६. चिरन्तन सुख, ७. मुग्ध क्षणों की अमरता, ८. प्रक्रिया की पूर्व स्थिति, ९. कातिक चाँद की रात, १०. दिक् पुरुष, ११. रेशमीन चेहरों का नाच, १२. ममताओं की सन्धि पर, १३. प्यार की तीन

व्यंजनाएँ, १४. सार्थकता, १५. शरद नीहारिका का देह स्वप्न, १६. आरसी ताल, १७. लाल गुलाबों की शाम, १८. सहज मन का बिम्ब, १९. एक टुकड़ा चाँद, २०. कटा हुआ आसमान, २१. निर्वासित आत्मा, २२. हटती रोशनी, २३. अशेष प्रतीक्षा, २४. अवस्तु करुणा, २५. कोणार्क पर तीसरा प्रहर, २६. संघर्षरत व्यक्तित्व, २७. अर्ध जन्म, २८. अ—नया वर्ष, २९. भविष्य पृष्ठ, ३०. बरकुल चिलका झील, ३१. एक असंकल्पित शाम, ३२. साक्षात्कार, ३३. असिद्ध की व्यथा और ३४. अनबींधे मन का गीत।

सामान्यतया 'जो बँध नहीं सका' के प्रथम खंड 'इतिहास की पीड़ा' में संकलित कवि माथुर की कविताएँ आधुनिक भावबोध की कविताएँ हैं और डॉ० नगेन्द्र के कथनानुसार उनमें 'विषमता की पीड़ा से व्यस्त वर्तमान जीवन के यथार्थ का करुण स्पन्दन है। आज के इतिहास की पीड़ा उस गर्भिणी की पीड़ा है जो प्रसव की वेदना का अनुभव करने पर भी प्रसव करने में असमर्थ है। इस पीड़ा का अनुभव व्यक्ति चेतना की परिधि से बाहर व्यापक सार्वभौम अनुभूति के आधार पर ही किया जा सकता है। यह दो प्रकार से सम्भव है : एक तो व्यक्तिगत जीवन की विषमताओं को इस सार्वभौम पीड़ा का अंश मानकर, और या फिर इतिहास बोध संप्रेरित कल्पना के द्वारा। गिरिजाकुमार जैसे संवेदनशील कवि के लिए प्रायः दोनों ही मनःस्थितियाँ सम्भव हैं। इन कविताओं में स्वभावतः विद्रूप का प्राधान्य है जिसके साथ हमारे संस्कार तादात्म्य करने में कुछ कठिनाई का अनुभव करते हैं। इसलिए ऐसा लगता है कि इन कविताओं में गिरिजाकुमार का कवि हमारे संस्कारों को छोड़कर आगे बढ़ गया है।' इस कथन की पुष्टि में कुछ उदाहरण प्रस्तुत करना असंगत न होगा और हम देखते हैं कि कवि माथुर ने 'जो बँध नहीं सका' की प्रथम कविता 'दो पाटों की दुनिया' में यह एक महत्वपूर्ण प्रश्न उठाया है—

> हर आदमी में देवता है
> और देवता बड़ा बोदा है
> हर आदमी में जन्तु है
> जो पिशाच से न थोड़ा है

हर देवतापन
हमको नपुंसक बनाता है
हर पैशाचित पशुत्व
नये जानवर बढ़ाता है
हम क्या करें
देवता और राक्षस के क्रम से कैसे छूटें

कवि ने इस आधुनिक युग में सत्य को भी एक अपराध माना है और वह इस जगत को बौनों की दुनिया कहता है तथा 'इतिहास का सिंहासन' में शक्ति द्वारा किए जानेवाले राजनीतिक परिवर्तनों का व्यंग्यात्मक चित्रण करता है। इसी प्रकार कवि ने इतिहासको आदिम न्याय, एक बच्चा, विकृत सत्य और एक व्यंग्य स्थिति भी कहा है तथा इतिहास का हंस में उसने यह भी स्पष्ट किया है कि शक्ति द्वारा अपना साम्राज्य बढ़ानेवाले प्रगतिशील और संस्कृति के सार्थवाह कहलाते हैं पर कोमल, कमनीय विचारधारा के शासक पतनशील, स्त्रैण एवं ह्रासमान कहे जाते हैं। इस प्रकार—

सदियों से बहस छिड़ी
संस्कृति की भूमि पर
खड़े हुए मृत्युहीन देवदत्त, सिद्धार्थ
दोनों के बीच में
इतिहास हँस पड़ा
घायल बेहोश आर्त्त

और-

हाय रे विडम्बना
पर इस जटिल दुनिया की
हंस पर आँसू बहाते हैं सिद्धार्थ
सिर्फ इसलिए कि
दया करुणा अक्षुण्ण रहे
घायल ही रहे सदा

पात्र संवेदना का
खत्म हो न पाये कभी
देवदत्त, सिद्धार्थ
दोनों की प्रयोजना

'इतिहास का पीड़ा' खण्ड की एक कविता में कवि ने अष्टग्रह कूट पर भगवान से प्रार्थना करते हुए यही आशा प्रकट की है कि इस समाधान-हीन अखण्ड बासोपन की अपेक्षा वह किसी भी अनहोनी दुर्घटना को बेहतर समझता है और अर्ध आधुनिकों की बातचीत में कवि आधुनिक सभ्यता पर व्यंग्य भी करता है साथ ही पत्तीदार रोशनी का दम्भ' में भी आधुनिक सभ्यता पर ही व्यंग्य किया गया है और 'अग्नि की शेष परीक्षा', अन्तिम आत्म हत्या तथा एक सितम्बर १६६६ आदि कविताओं में युद्ध के दुष्परि-णामों का सजीव एवं मर्मस्पर्शी चित्रण है।

'जो बँध नहीं सका' के दूसरे खंड काल दृष्टि में केवल छह कविताएँ हैं और इस खण्ड की कविताओं में देश की अपेक्षा काल का बोध अधिक है अर्थात इतिहास पर दर्शन हावी हो गया है तथा स्वयं कवि की अपनी विज्ञप्ति के अनुसार ये 'काल की चतुर्थ विभा के रहस्यमय बिम्बों में प्रवेश करने वाली कुछ रचनाएँ हैं, जिनमें देशकाल संहृति की स्पर्श भार सूक्ष्मानुभूतियाँ प्रस्तुत की गई हैं। कलात्मक अभिव्यक्ति की एक सर्वथा अछूती दिशा तथा प्रेरणा भूमि, इन रचनाओं के द्वारा साहित्य में प्रथम बार उद्‌घाटित हुई है।' यहाँ यह भी स्मरणीय है कि श्री गिरिजाकुमार माथुर साहित्य के विद्यार्थी होते हुए भी आधुनिक ज्ञान विज्ञान से सम्पर्क रखने का निरन्तर प्रयास करते रहे हैं और शायद यही कारण है कि 'काल दृष्टि' खंड की कविताएँ प्रतीकात्मक तर्कशास्त्र की धारणाओं एवं निष्कर्षों से प्रभावित हैं। उदाहरणार्थ ; इस खंड की पहली कविता 'समानान्तर सत्य' यहाँ उद्‌धृत है—

निर्जन दूरियों के
ठोस दर्पणों में
चलते हुए

सहसा मेरी एक देह
तीन देह हो गयी
उगकर एक बिन्दु पर
तीन अजनबी साथ चलने लगे
अलग दिशाओं में
और यह न ज्ञात हुआ
इनमें कौन मेरा है ।

वस्तुतः इस काव्यसंग्रह का अन्तिम तृतीय खंड 'प्रतिबिम्बों का लय' ही आकार में सबसे बड़ा है और इसमें सर्वाधिक कविताएँ भी संगृहीत हैं। इस खंड की कविताओं में कवि अपनी सहज भावभूमि पर उतर आया है और डा० नगेन्द्र के शब्दों में 'यह भूमि है रोमानी स्वप्न अनुभूतियों की। इन अनुभूतियों को पकड़ने के लिए शब्द, अर्थ और नाद प्रभाव के जिन बारीक उपकरणों की अपेक्षा होती है, वे आधुनिक युग में दो चार कवियों को ही उपलब्ध हैं—वरिष्ठ कवियों में पंत को, और मध्यम पीढ़ी के कवियों में शमशेर व गिरिजाकुमार माथुर को।' कहने का अभिप्राय यह है कि 'प्रतिबिम्बों की लय' खंड की कविताओं में रोमानी स्वप्न अनुभूतियों का ही चित्रण हुआ है पर कला पक्ष की उत्कृष्टता के कारण उनका महत्व और भी अधिक बढ़ गया है। वहाँ यह भी ध्यान में रखना होगा कि 'जो बँध नहीं सका' के प्रथम व द्वितीय खंड की कविताएँ कला पक्ष की दृष्टि से हीन नहीं हैं क्योंकि उनमें भी नूतन भावबोध के साथ-साथ अभिनव शिल्प के दर्शन होते हैं लेकिन इस तीसरे खंड 'प्रतिबिम्बों की लय' में तो काव्यकला और भी अधिक निखरे हुए रूप में प्रत्यक्ष हो उठी है। उदाहरणार्थ ; इस काव्य संग्रह की अंतिम कविता 'जो बँध नहीं सका' की कुछ अंतिम पंक्तियाँ दर्शनीय हैं—

हर पात्र गल जाता
भभक उड़ जाती हर वर्तिका
हर शंख जाता टूट
हर फूल
छूते ही वह अनोखी गन्ध

बिखर जाता—
यह इन सबकी विवशता नहीं
नहीं उस आग की
उस गन्ध की
उस शब्द की भी
सिर्फ मेरी है।

निष्कर्ष

वस्तुतः सन् १९६८ में प्रकाशित 'जो बँध नहीं सका' नामक अपने पांचवे काव्य संग्रह के बाद भी कवि माथुर ने अनेक कविताएँ लिखी हैं और उनकी ये कविताएँ प्रसिद्ध पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुकी हैं और होती रहती है। इस प्रकार हम यहाँ निस्संकोच रूप में यह कह सकते हैं कि भाव एवं कला दोनों ही दृष्टियों से माथुर जी अपने काव्य विकास में सतत समृद्ध होते रहे हैं और समीक्षक उन्हें भविष्य का कवि मानते हैं तथा उनके सम्बन्ध में यही कहा जाता है 'वह अपनी पीढ़ी के अन्य कवियों की भाँति एक बिन्दु पर आकर रुक नहीं गये, न अपनी ही परिपाटी से बँधकर रह गए। यही कारण है कि वे अब तक एकदम नई-नई भावभूमियों, भाषा, मुहावरे और संवेदना के अपरिचित रूपाकारों की उद्भावना करते रहे हैं। जो कवि या कलाकार अपने युग की नितांत समसामयिक 'चालू' प्रवृत्तियों को अभिव्यक्त करते हैं या एक लीक, वाद, स्कूल या निकाय की परिधियों में बँधकर काव्य-रचना करते हैं, वह युग को शीघ्र समझ में आ जाते हैं, अनाकांक्षित नहीं लगते। किन्तु गिरिजाकुमार माथुर ऐसे कवि हैं जिनका बहुत सा कृतित्व भविष्य का है।'

प्रयोगवाद या नयी कविता और माथुर

प्रवेश

जैसा कि श्री रामधारी सिंह 'दिनकर' ने 'काव्य की भूमिका' नामक पुस्तक में लिखा है कि 'एक शैली के बहुत काल तक प्रचलित होने से अभिव्यक्ति में एकरसता आ जाती है, एक ही प्रकार के शब्द बार-बार प्रयुक्त होने से अपना जादू खो बैठते हैं और लीक इतनी पिटीपिटाई और परिचित हो जाती है कि उस पर चलने वाला कोई भी कवि इस विश्वास से नहीं बोल पाता कि वह कोई नयी बात बोल रहा है।' अतएव युग विशेष के काव्य में स्वाभाविक ही अनुभूतियों, नवीन दृष्टिकोण और नवीन चेतना का स्फुरण हुआ करता है तथा इस नवीन स्फुरण में कविता परम्परागत लीक को छोड़कर नया पथ ग्रहण करती है और काव्य जगत में नवीन परिवर्तन स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होते हैं। यही कारण है कि हिन्दी कविता में भी समय-समय पर नवीन प्रवृत्तियाँ विकसित होती रहीं और उक्त प्रवृत्तियों को 'वाद' भी कहा गया।

सत्य तो यह है कि 'हिन्दी कविता इन वादों के बीच ही जनमी, पनपी और एक विराट अक्षयवट की तरह अपनी जड़ों को देशान्तर तक फैला चुकी है। इस सन्दर्भ में छायावाद, प्रगतिवाद एवं प्रयोगवाद आदि कुछ नाम उल्लेखनीय हैं और डा० विनयमोहन शर्मा के शब्दों में 'आधुनिक हिन्दी

कविता में एक नये वाद का स्वर सुनाई देने लगा है और वह है प्रयोगवाद। इस प्रकार की रचनाओं में आत्मपरक भावनाओं और पर परक विचारों के साथ सामंजस्य स्थापित करने का दावा किया जाता है। शैली की अभिनवता, नूतन प्रतीक, कल्पनाएँ, प्रचलित पद तथा नवीन छन्दों का सृजन इनकी विशेषता बताई जाती है। इस वाद का जन्म छायावाद युग की अति भाव विभोरता और प्रगतिवाद काव्य की शुष्क बौद्धिकता की प्रतिक्रिया जान पड़ती है। प्रगतिवाद ने हिन्दी साहित्य को ऐसी कोई चीज प्रदान नहीं की जिसका प्रभाव स्थायी हो सके।····हिन्दी कवि प्रगतिवाद के राजनीतिक बंधनों से मुक्त होने के लिए छटपटा उठा है। इसलिए वह अपने ढंग से नये प्रयोग करना चाहता है और अपने को प्रयोगवादी कहलाने में गौरवान्वित अनुभव करता है। उसे हृदय वीणा की झंकार जितनी बासी और बेसुरी मालूम होती है उतनी ही फावड़े की खनखनाहट भी कानों को विदीर्ण करने वाली प्रतीत होने लगी है। इसप्रकार प्रयोगवाद हिन्दी साहित्य की आधुनिक-तम प्रवृत्ति है और जिस प्रकार प्रगतिवाद को छायावाद की प्रतिक्रिया कहा जाता है उसी प्रकार प्रयोगवाद, प्रगतिवाद की प्रतिक्रिया है।

प्रयोगवाद एवं नयी कविता का सम्बन्ध

वस्तुतः प्रयोगवाद का उद्‌भव और विकास मुख्यतया हिन्दी काव्य जगत में ही हुआ है और सन् १९४३ में अज्ञेय जी के सम्पादकत्व में प्रकाशित 'तार सप्तक' नामक काव्य संग्रह ने हिन्दी जगत को एक नवीन काव्य प्रवृत्ति से परिचित कराया, जो कि उक्त संग्रह में अज्ञेय जी की भूमिका तथा संगृहीत कवियों में से अधिकांश के वक्तव्यों में काव्यगत प्रयोगों की विस्तृत चर्चा के कारण प्रयोगवाद कहलाने लगी। लगभग चार वर्ष पश्चात सन १९४७ में अज्ञेय जी के सम्पादकत्व में प्रतीक नामक एक पत्रिका का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ और इसमें प्रकाशित अधिकांश कवियों तथा उनकी कविताओं ने प्रयोग-वाद सम्बन्धी प्रचलित धारणा को बल प्रदान किया और उसकी चर्चा अधिक तीव्रता से की जाने लगी। पुनः चार वर्ष पश्चात सन् १९५१ में अज्ञेय जी के सम्पादकत्व में 'तार सप्तक' की परम्परा में 'दूसरा सप्तक' प्रकाशित हुआ

और इसकी 'भूमिका' में अज्ञेय ने प्रयोगवाद की अभिधा का प्रतिवाद करते हुए कहा कि 'प्रयोग का कोई वाद नही है। हम वादी नहीं रहे, नहीं हैं। न प्रयोग अपने आप में इष्ट या साध्य है। ठीक इसी तरह कविता का भी कोई वाद नहीं है ; कविता भी अपने आप में इष्ट या साध्य नहीं है - अतः हमें प्रयोगवादी कहना उतना ही सार्थक या निरर्थक है जितना हमें कवितावादी कहना।'

इस प्रकार अज्ञेय ने प्रयोग को 'साध्य' न मानकर साधन माना और सप्तकों की शैली में काव्य-रचना करने वाले नये कवियों ने अपनी कविताओं के लिए 'नयी कविता' की अभिधा प्रदान की पर प्राचीन परम्परा के मान्य समीक्षक तो 'प्रयोगवाद' संज्ञा का प्रयोग ही करते रहे, जबकि नयी प्रतिभाओं के प्रति सहानुभूति रखने वाले समीक्षकों या काव्य प्रेमियों ने उसे नयी कविता का नाम प्रदान किया और प्रत्येक अनूठे प्रयोग को नयी कविता की सीमा मे समाविष्ट करने का औदार्य दिखाया। इसी बीच बिहार के तीन कवियों—नलिन विलोचन शर्मा, केसरीकुमार और नरेश ने मिलकर प्रयोगवाद का विरोध किया और प्रयोगवाद के स्थान में प्रपद्यवाद या नकेनवाद नाम का प्रचलन किया तथा····हिन्दी साहित्य की नूतन काव्य प्रवृत्ति अर्थात सन् १९४३ से सन् १९ ३ तक की काव्य धारा को प्रयोगवाद, नयी कविता एवं प्रपद्यवाद आदि नाम प्रदान किये गये।

वस्तुतः इनमें से प्रपद्यवाद या नकेनवाद तो केवल बिहार के कुछ इने-गिने कवियों तक ही सीमित रहा और डॉ० रमाशंकर तिवारी के शब्दों में 'प्रपद्यवाद प्रयोग का दर्शन है क्योंकि वह प्रयोग को साध्य मानता है और भाव तथा भाषा, विचार तथा अभिव्यक्ति आवेश तथा आत्मप्रेषण, तत्व तथा रूप, इनमें से किसी में अथवा सभी में प्रयोग को आवश्यक समझता है।' इस प्रकार प्रपद्यवाद या नकेनवाद को स्वतंत्र न मानकर प्रयोगवादी काव्यधारा के अन्तर्गत समझना ही उचित जान पड़ता है और बहुत से विचारक तो नयी कविता को भी प्रयोगवादी काव्यधारा से अभिन्न नहीं समझते। यहाँ यह स्मरणीय है कि अज्ञेय को दूसरे सप्तक में 'प्रयोगवाद' संज्ञा का

विरोध किया था पर उनके द्वारा सम्पादित तीसरे 'सप्तक' के वक्तव्यों में प्रयोग शब्द अनेक बार आया है और इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि नये कवि प्रयोग के मोह से मुक्त नहीं हो सके हैं।

यद्यपि नयी कविता के नामकरण का श्रेय अज्ञेय जी को ही है और सन् १९४३ से सन् १९५६ तक हिन्दी कविता में जो नवीन प्रयोग हुए नयी कविता उसी का विकास है पर बहुत से नये कवियों और समीक्षकों ने अज्ञेय को नयी कविता का प्रवर्तक न मानकर सन् १९५५ के पश्चात् की हिन्दी कविता को ही नयी कविता मानना समीचीन समझा। सत्य तो यह है कि नये कवियों और समीक्षकों में नयी कविता की अभिधा के प्रयोग के सम्बन्ध में प्रचुर मत वैषम्य उपलब्ध है और यदि श्री गिरिजाकुमार माथुर तथा श्री बालकृष्ण राव छायावाद के पश्चात् रचित समस्त काव्यकलाप को नयी कविता के वृत्त में समाहित करते प्रतीत होते हैं तो डा० नामवर सिंह तथा डा० रामविलास शर्मा 'नयी कविता को प्रयोगवाद का छद्मस्वरूप मानते हैं। इसी प्रकार श्री शिवदान सिंह चौहान ने भी नयी कविता को प्रयोग-वाद के अन्तर्गत माना है और डा० नगेन्द्र का भी यही कहना है कि प्रयोगवाद का नाम बाद में चलकर नयी कविता पड़ गया। साथ ही डा० जगदीश गुप्त ने भी नयी कविता को प्रयोगवाद का विकास बतलाया है और डा० कृष्णनंदन पीयूष का भी यही मत है कि 'प्रयोगवाद ही अति व्या-पक होकर नयी कविता के रूप में समादृत हुआ।' दूसरी ओर श्री नरेश मेहता और श्रीकान्त वर्मा ने नयी कविता को प्रगतिवाद एवं प्रयोगवाद से सर्वथैव भिन्न एवं स्वतंत्र काव्य प्रयत्न का गौरव प्रदान किया है तथा डा० श्यामसुन्दर घोष, डा० रामस्वरूप चतुर्वेदी और श्री लक्ष्मीकान्त वर्मा आदि विचारकों ने भी प्रयोगवाद और नयी कविता को दो विभिन्न काव्यधारायें मानने पर जोर दिया है।

इससे स्पष्ट हो जाता है कि हमारे समीक्षा जगत में दो प्रकार की विचारधारायें विद्यमान हैं और एक ओर तो प्रयोगवाद एवं नयी कविता को अभिन्न समझा जाता है तथा दूसरी ओर प्रयोगवाद एवं नयी कविता को

पृथक-पृथक काव्यधारा मानने पर बल दिया जाता है। यद्यपि प्रयोगवाद और नयी कविता को परस्पर पृथक-पृथक माननेवाले विचारकों का कहना है कि 'नयी कविता प्रयोगवादी कविता से इसलिए भी भिन्न है कि उसमें भाव और शिल्प दोनों की नवीनता है, जबकि प्रयोगवादी कविता में मात्र शिल्प का चमत्कार है' लेकिन हम इस धारणा को पूर्वाग्रहयुक्त ही समझते हैं।

वस्तुतः नयी कविता प्रयोगवाद से भिन्न कोई दूसरी काव्य प्रवृत्ति नहीं है और प्रयोगवाद यदि प्रयोगों की आरम्भिक अवस्था है तो नयी कविता उसके बाद की विकसित स्थिति है। वास्तव में दोनों का लक्ष्य एक है और दोनों की काव्यगत प्रवृत्तियाँ भी अभिन्न हैं। साथ ही नयी कविता के तथाकथित स्तम्भों की उक्तियों में भी केवल काव्यशिल्प का चमत्कार दिखायी पड़ता है और प्रयोगवाद की संज्ञावली काव्यकृतियों में भी भाव-विषयक नवीनता का अभाव नहीं है तथा नयी कविता और प्रयोगवाद को पृथक् पृथक माननेवाले जिन कवियों को—अज्ञेय, गिरिजाकुमार माथुर और धर्मवीर भारती आदि को—नयी कविता में महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया जाता है वे ही प्रयोगवाद के उन्नायकों में प्रमुख हैं। अतएव डा० रमाशंकर तिवारी के शब्दों में यहाँ यह कहा जा सकता है कि 'नयी कविता को प्रयोगवाद कहने में कोई असंगति अथवा अनौचित्य नहीं दिखाई पड़ता या नयी कविता और प्रयोगवाद में कहीं सर्वमान्य विभाजक रेखा खींचना संभव नहीं है।' इसी प्रकार डा० रमाकांत शर्मा ने अपने शोध प्रबन्ध 'छायावादोत्तर हिन्दी कविता' में यही लिखा है 'नयी कविता को मैं प्रयोगवाद की प्रगति का अगला चरण मानता हूँ। दोनों में अस्वाभाविक भिन्नता कहीं भी नहीं मिलती है। कुछ लोगों ने मात्र अज्ञेय के विरोधवश नयी कविता को प्रयोगवाद से अलग माना है।' इस प्रकार प्रयोगवाद, नयी कविता, प्रपद्यवाद और नकेनवाद आदि एक ही आन्दोलन की विविध संज्ञायें हैं।

प्रयोगवाद का स्वरूप विश्लेषण—

सामान्यतया प्रयोगवादी काव्यधारा के स्वरूप का विश्लेषण करते समय सर्वप्रथम प्रश्न यह उठता है कि इस काव्यधारा को प्रयोगवादी क्यों

कहा जाता है ? वास्तव में प्रयोग शब्द अंग्रेजी के 'एक्सपेरिमेंट' के अनुरूप ही हिन्दी में प्रचलित हुआ है और यहाँ यह भी ध्यान में रखना होगा कि 'वर्तमान युग विज्ञान युग है और एक नवीन दृष्टि लेकर आया है जिसका नाम है प्रयोग दृष्टि और कार्य है बौद्धिक विश्लेषण। जिस प्रकार एक वैज्ञानिक युक्ति और तर्क द्वारा पदार्थों का विश्लेषण करता है उसी प्रकार प्रयोगवाद मानव के शरीर और मस्तिष्क के तत्वों का विश्लेषण करता है। मानसिक भावनाओं का विश्लेषण करने के लिए वह अनेक प्रयोग करता है और उसे कविता में उतारता है। नवीन प्रयोगों के पक्षपाती प्रयोगशील कवि विभिन्न प्रकार से प्रयोग करके कविता का मार्ग निश्चित करना चाहते हैं।' इस प्रकार प्रगतिवाद के प्रतिक्रियास्वरूप लिखी जानेवाली कविताओं के लिए 'प्रयोगवाद' शब्द रूढ़ सा हो गया है अन्यथा विचारपूर्वक देखा जाय तो हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि साहित्य के प्रारम्भिक काल से लेकर आज तक हमेशा ही भिन्न-भिन्न प्रकार के प्रयोग होते रहे हैं और प्रत्येक युग में वर्ण्य विषय व शैली आदि के क्षेत्र में नूतन उद्भावनाएँ होती रही हैं।

सम्भवतः यही कारण है कि कुछ वर्षों पूर्व 'आकाशवाणी' से प्रयोगशील कविता के सम्बन्ध में प्रसारित होनेवाले एक परिसंवाद में विवादास्पद प्रश्नों को सुलझाया न जा सका था। इस परिसंवाद में श्री सुमित्रानन्दन पंत, डा० शिवमंगल सिंह 'सुमन', श्री भगवतीचरण वर्मा, श्री अज्ञेय, श्री उपेन्द्रनाथ 'अश्क' तथा डा० धर्मवीर भारती आदि ने भाग लिया था और विवाद के प्रश्न थे—प्रयोगशील कवि किसे कहते हैं ? उसका लक्ष्य क्या है ? वह क्या केवल प्रयोग के लिए प्रयोग है और क्या उसने हिन्दी कविता को वस्तु, विषय व शैली की दृष्टि से कोई नवीन दिशा प्रदान की है ? इस परिसंवाद का प्रारंभ करते हुए पंत जी ने कहा था 'प्रयोगवादी काव्य जहाँ अपनी शैली तथा रूपविधान में अति वैयक्तिक हो जाता है वहाँ अपनी भावना में जनवादी। वह छायावादी स्वप्नों के कोहरे को हटाकर एक नवीन वास्तविकता के मुख को पहिचानना चाहता है और सूक्ष्म भाव जगत से हटकर फिर वास्तविकता की भूमि पर उतरना चाहता है पर उस भूमि में भूकम्प है। उसकी वास्तविकता बदल रही है। उसका परिवेश नवीन काव्य को घेरे हुए है। उसके

भाव और वस्तु जगत में एक विरोध आ गया है। वह परिस्थितियों के भार से दबा जा रहा है, वह उसे सँभाल नहीं पाता, उनकी धारा को तोड़कर वह आगे बढ़ना चाहता है। वह बाहर सुदूर बाहर की ओर देख रहा है और उसी सम्बन्ध में अपने को समझना चाहता है। यह नवीन काव्य प्रभाववादी भी है। वह नित्य नवीन प्रभावों की छायावीथियों में चलता हुआ दिखाई देता है।'

वस्तुत: उक्त परिसंवाद में भाग लेते समय श्री शिवमंगल सिंह 'सुमन' ने प्रयोगवादी काव्य का कोई अभिप्राय स्पष्ट नहीं किया और उसे शैली तथा व्यंजनागत चमत्कार कहकर उसे युग की बहुत बड़ी माँग मानते हुए पंत जी के प्रश्नों का समुचित उत्तर नहीं दिया। यही स्थिति भगवतीचरणजी, अश्क जी और डॉ॰ धर्मवीर भारती आदि की भी रही पर अज्ञेय जी ने अवश्य उक्त प्रश्नों का उत्तर देने का प्रयास किया और उन्होंने नवीन परिस्थितियों के साथ नये प्रकार के रागात्मक सम्बन्धों को प्रयोगवादी कविता का लक्षण मानते हुए शैली के साथ विषय व वस्तु की नवीनता का सम्बन्ध भी प्रयोगशील काव्य से स्थापित किया है। साथ ही अज्ञेय जी प्रयोगवादी काव्यधारा का लक्ष्य भी कविता से भिन्न नहीं समझते और प्रयोग को साध्य न मानकर साधन मानते हैं कारण कि कविता का साध्य व्यक्ति सत्य का साधारणीकरण कर आनन्द सृष्टि करना है।'

यद्यपि अज्ञेय जी स्वयं को और सप्तक के अन्य कवियों को भी प्रयोगवादी कहा जाना उपयुक्त नहीं समझते पर जिस प्रकार न चाहते हुए भी 'छायावाद' नाम को प्रसिद्धि मिली उसी प्रकार प्रयोगवाद नाम भी प्रचलित हो गया और डा॰ रवीन्द्र 'भ्रमर' के शब्दों में 'प्रयोगवाद आधुनिक हिन्दी कविता में सर्वाधिक मौलिक और अपारम्परिक प्रवृत्ति के रूप में आया। इसने कविता के धर्म और रचनाशिल्प की पूर्व प्रचलित मान्यताओं को झकझोर कर रख दिया।' इस प्रकार डॉ॰ गोविन्दराम शर्मा के कथनानुसार 'संक्षेप में हम कह सकते हैं कि प्रयोगवाद कविता की एक नूतन शैली विशेष है जो कवि द्वारा अनुभूत सत्य को पाठक तक पहुँचाने के लिए विभिन्न प्रयोगों

को आत्मसात करती है। प्रयोगवाद में कवि का 'वस्तु' के प्रति कोई विशेष आग्रह नहीं होता। प्रयोगवाद एक वर्ग विशेष का साहित्य है, जिसका तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक आदि समस्याओं से कोई विशेष सम्बन्ध नहीं रहता, पर जिसमें केवल शैलीगत प्रयोगों को अधिक महत्व दिया जाता है।'

प्रयोगवाद या नयी कविता के प्रेरक स्रोत और मूल तत्त्व

वस्तुतः प्रयोगवादी कविता के उद्भव के कारणों का उल्लेख करते हुए श्री लक्ष्मीकान्त वर्मा ने लिखा है 'प्रथम तो छायावाद ने अपने शब्दाडम्बर में बहुत से शब्दों और बिम्बों के गतिशील तत्त्वों को नष्ट कर दिया था। दूसरे, प्रगतिवाद ने सामाजिकता के नाम पर विभिन्न भाव स्तरों एवं शब्द संस्कारों को अभिधात्मक बना दिया था। ऐसी स्थिति में नये भाव-बोध को व्यक्त करने के लिए न तो शब्दों में सामर्थ्य थी और न परंपरा से मिली हुई शैली में। परिणामस्वरूप उन कवियों को जो इनसे पृथक् थे सर्वथा नया स्तर और नये माध्यमों का प्रयोग करना पड़ा। ऐसा इसलिए और भी करना पड़ा क्योंकि भाव स्तर की नयी अनुभूतियाँ विषय और संदर्भ में इन दोनों से सर्वथा भिन्न थीं।' इस प्रकार श्री लक्ष्मीकांत वर्मा प्रयोगवादी कविता को छायावाद और प्रगतिवाद की प्रतिक्रिया मानते हैं तथा उनका कहना है 'इस नयी कविता या प्रयोगवाद को नवीन अभिव्यक्ति के लिए नवीन माध्यम और नवीन विषय चुनने पड़े और वह एक नयी दिशा की ओर अग्रसर हुई जो कि पहले अनिर्दिष्ट और अज्ञात थी। वह नयी दिशा है—

(क) प्रयोगवाद ज्ञात से अज्ञात, प्राचीनता से नवीनता की ओर आगे बढ़ता है।

(ख) प्रयोगवाद परम्परा से स्थापित सत्य से आगे बढ़ता है।

(ग) प्रयोगवादी का लक्ष्य परम्पराओं का खंडन करना ही नहीं, अपितु साहित्य में निर्जीव तत्त्वों के स्थान पर नये सजीव तत्त्व का अन्वेषण करना है।

इस संदर्भ में डॉ० देवराज का कहना है 'पुरानी कविता रूढ़िग्रस्त एवं

अरोचक हो उठी है, दूसरे काव्य भाषा को जन भाषा के निकट लाना है अथवा काव्य निबद्ध अनुभूति को जन जीवन के सम्पर्क में लाना है, बदलते हुए जीवन की नयी सम्भावनाओं के उद्‌घाटनाओं के लिए अथवा नये मूल्यों की प्रतिष्ठा के लिये नवीन प्रयोग करते हैं। इसीलिए नई शैली का अर्थ है जीवन या अनुभव जगत के नये पहलुओं को नई दृष्टि से देखना और उन्हें नये चित्रों, प्रतीकों, अलंकारों द्वारा अभिव्यक्ति देना।'

प्रयोगवाद या नयी कविता के उद्‌भव के सम्बन्ध में दिये गये उक्त मतों का विश्लेषण करते हुए यहाँ कहा जा सकता है कि प्रयोगवाद या नयी कविता के जन्म के निम्नलिखित कारण हैं—

१—प्राचीन कविता अर्थात् छायावाद तथा प्रगतिवाद की परम्पराबद्धता और रूढ़िग्रस्तता।

२—बदलते हुए समाज के सत्यों और मूल्य को उद्‌घाटित करने के लिए नवीन अभिव्यंजना की आवश्यकता।

३—जीवन या अनुभव जगत के नए पहलुओं को नयी दृष्टि से देखना और उन्हें नये चित्रों, प्रतीकों, अलंकारों द्वारा अभिव्यक्त करना।

सामान्यतया प्रयोगवाद को छायावाद और प्रगतिवाद की प्रतिक्रिया माना जाता है पर हम यहाँ यह संकेत कर देना भी उचित समझते हैं कि इस सम्बन्ध में छायावाद और प्रगतिवाद को दोष देना व्यर्थ है क्योंकि प्रयोगवादी तो प्रारम्भ से ही एक नवीन दृष्टिकोण को लेकर चले जिसका लक्ष्य ही किसी नयी वस्तु, नयी भावना और नूतन शिल्प का आविष्कार करना था। यहाँ यह भी स्मरणीय है कि नयी कविता प्रयोगवाद का ही विकसित रूप है और डॉ० गणपतिचन्द्र गुप्त ने उसके निम्नलिखित चार मूल तत्त्व माने हैं—

(१) नवीनता—अर्थात् उसमें नवीन विषयों का वर्णन नवीन शैली में किया जाता है।

(२) मुक्त यथार्थवाद—अब तक जिस अश्लीलता, नग्नता और कामुकता का काव्य में बहिष्कार किया जाता था, उसका चित्रण नयी कविता में पूर्ण रुचि के साथ किया जाता है।

(३) बौद्धिकता—नया कवि भावात्मकता की अपेक्षा बौद्धिकता को अधिक महत्व प्रदान करता है।

(४) क्षणिकता—इसमें चिरन्तन एवं स्थायी भावनाओं एवं समस्याओं की अपेक्षा क्षणिक अनुभूतियों का आदर किया जाता है। नया कवि एक क्षण के आनन्द की पूर्ण अनुभूति के लिए सम्पूर्ण जीवन के सुख साधनों को खो देना श्रेयस्कर समझता है।

प्रयोगवाद या नयी कविता की प्रमुख प्रवृत्तियाँ

यद्यपि विचारक अपनी-अपनी दृष्टि से प्रयोगवाद या नयी कविता की प्रवृत्तियों का निर्धारण करते हैं पर विचारपूर्वक देखा जाय तो प्रयोगवाद या नयी कविता में मुख्यतः निम्नलिखित प्रवृत्तियों के दर्शन होते हैं—

१—प्रयोगवादी कविता में वैयक्तिकता का अतिरेक-सा है और उसमें निजी मान्यताओं, विचारधाराओं व अनुभूतियों का ही अधिकाधिक चित्रण किया गया है। इस प्रकार कभी-कभी प्रयोगवादी कविता आत्म विज्ञापन का ही रूप धारण कर लेती है—

बीसवीं सदी की जटिल समस्याओं ने
मुझे उत्पन्न किया
अकाल भृत्यों के परिवार ने
मेरा लालन पालन किया
शत शत वैयक्तिक पारिवारिक सामाजिक
ग्रंथियों से मेरा निर्माण हुआ।

—राजेन्द्र किशोर

यद्यपि प्रयोगवादी काव्यधारा में बहुधा घोर अहंनिष्ठ व्यक्तिवाद के ही दर्शन होते हैं पर 'यह आत्यंतिक वैयक्तिकता धीरे-धीरे मर्यादित और संयमित हो जाती है। कवि अनुभव करता है कि स्थिति की विरूपता क्षणिक नहीं है।' इस प्रकार कहीं-कहीं अहं का विसर्जन होकर समष्टि से मिलने की आकांक्षा भी जाग्रत होती है और प्रयोगवादी कवि कहता है—

हम अहम् को भूल

मेटकर अपनी बनावट

तोड़ सीमाएँ सभी

एक दिन फिर मिलेंगे धार में

समवेत जीवन के अपरिमित ज्वार में

—भारतभूषण अग्रवाल

कुछ प्रयोगवादी कवियों ने तो अपनी रचनाओं में सामाजिक यथार्थ का भी सुन्दर अंकन किया है; जैसे—

ईश के सुवर्ण सिंहासन के पार्श्व से

उड़ गये पुष्पक विमान पृथ्वी की ओर

करते हैं पुष्प वृष्टि

नष्ट करते हैं नर सृष्टि कर अग्नि वृष्टि

दुर्दम नृशंस आतताइयों के ध्वंसकारी वायुयान

हरे हरे खेतों के

काले काले लोहे के कल कारखानों के

नीचे कहीं दबा था भूकम्प एक चुपचाप

हड्डियों का ताप।

—रामविलास शर्मा

प्रयोगवाद या नयी कविता में आस्था की अपेक्षा अनास्था की भावना ही प्रधान रूप से है और प्रयोगवादी कवि यही कहता है—

आखिर कब तक

लड़ने वाली मुट्ठी जेबों में बंद

नया दौर लाने में असफल हर छंद

कब तक

आखिर कब तक ?

—धर्मवीर भारती

२—प्रयोगवाद या नयी कविता में अनास्था और विद्रोह की प्रधानता भी है तथा कवि समस्त परम्पराओं और रूढ़ियों का घोर तिरस्कार करते हैं।

इस प्रकार प्रयोगवादी काव्यधारा में कहीं तो आततायी सामाजिक परिवेश को चुनौती दी गयी है तो कहीं नियति को ललकारा गया है। उदाहरणार्थ—

ठहर ठहर आततायी ! जरा सुन ले
मेरे क्रुद्ध वीर्य की पुकार आज सुन जा।

—अज्ञेय

और भी—

मैं छोड़कर पूजा
क्योंकि पूजा है पराजय का विनत स्वीकार
बाँध कर मुट्ठी तुझे ललकारता हूँ।
सुन रही है तू
मैं खड़ा तुझको यहाँ ललकारता हूँ।

—भारतभूषण अग्रवाल

३—प्रयोगवाद या नयी कविता में यथार्थ चित्रण की प्रधानता सी है और प्रयोगवादी कवि अपनी अतृप्त कुंठाओं एवं दमित वासनाओं का प्रकाशन निस्संकोच रूप से करते हैं। जैसे—

धरो शिर
हृदय पर
वक्ष वह्नि से—तुम्हें
मैं सुहाग दूं—
चिर सुहाग दूं !
प्रेम अग्नि से—तुम्हें
मैं सुहाग दूं !
विकल मुकुल तुम
प्राणमयि
यौवनमयि
चिर वसन्तमयि
मैं सुहाग दूं !

विरह आग से—तुम्हें
मैं सुहाग दूं !

—शमशेर बहादुर सिंह

प्रयोगवादी काव्य धारा में यौन सम्बन्धी प्रतीक भी अत्यधिक संख्या में प्राप्त होते हैं; जैसे—

फिर आया नभ उमड़ आये मेघ काले
भूमि के कम्पित, उरोजों पर झुका-सा
विशद श्वासा रहित, चिन्तातुर
छा गया इन्द्र का नील वक्ष ।

—अज्ञेय

४—प्रयोगवाद या नयी कविता का कवि विगत या भावी के प्रति कोई रुचि नहीं रखता और उसका दृष्टिकोण क्षणवादी एवं निराशावादी ही है तथा वह तो हमेशा यही लक्ष्य रखता है—

आओ हम उस अतीत को भूलें
और आज की अपनी रग रग के अंतर को छू लें ।
छू लें इसी क्षण
क्योंकि कल के वे नहीं रहे
क्योंकि कल हम भी नहीं रहेंगे ।

—मुद्रा राक्षस

५—प्रयोगवादी काव्यधारा या नयी कविता में अनुभूति और रागात्मकता की अपेक्षा बुद्धि का विलास ही मुख्यरूप से होने के कारण अति बौद्धिकता के दर्शन होते हैं । इस प्रकार प्रयोगवादी कवि बौद्धिकता के झोंक में यहाँ तक कह गये—

चाँदनी चंदन सदृश
हम क्यों लिखें ?
मुख हमें कमल सरीखे क्यों दिखें ?
हम लिखेंगे
चाँदनी उस रुपये सी है कि जिसमें

चमक है पर खनक गायब है।

हम कहेंगे जो उसे :

मुंह घर—अजायब है

जहाँ पर बेतुके, अनमोल, जिन्दा और मुर्दा

भाव रहते हैं।

—अजित कुमार

६—प्रयोगवादियों का कहना है कि नयी कविता का सम्बन्ध किसी एक देश-विशेष से न होकर सम्पूर्ण सृष्टि के साथ है अतः नयी कविता के विषयों की परिधि अत्यन्त व्यापक है और प्रयोगवादी कवियों ने चींटी से लेकर हिमालय तक सब प्रकार के पदार्थों को अपनाया है। सत्य तो यह है कि इस काव्यधारा में 'पहली बार कंकरीट के पोर्च, चाय की प्याली, सायरन, रेडियम की घड़ी, चूड़ी का टुकड़ा, बाथरूम, क्रोशिए, गरम पकौड़ी, बाँस की टूटी हुई टट्टी, फटी ओढ़नी की चिंदिया, मूत्र सिंचित मृत्तिका के वृत्त में तीन टाँगों पर खड़ा नत ग्रीव धैर्य धन गदहा, बच्चे, दई मारे पेड़ इत्यादि का चित्रण हुआ है।' इस प्रकार प्रयोगवादी कवियों को शैलीगत रूढ़ियों और परम्पराओं के सदृश्य विषय सम्बन्धी कोई भी रूढ़ि मान्य नहीं है।

७—प्रयोगवादी काव्यधारा या नयी कविता का शिल्प छायावाद और प्रगतिवाद आदि अन्य काव्य प्रवृत्तियों से सर्वथा भिन्न है और यह भिन्नता छन्द, भाषा, अलंकार, प्रतीक एवं बिम्ब-विधान आदि विशेषताओं में दर्श-नीय भी है। डा० नगेन्द्र के कथनानुसार "इस क्षेत्र में प्रथम विशेषता है भाषा का सर्वथा वैयक्तिक प्रयोग। प्रयोगवादी शब्द की प्रचलित अर्थव्यंजना को सामान्यतः ग्रहण करना पसन्द नहीं करता।' इस प्रकार प्रयोगवादी कवि शब्द के साधारण अर्थ से बड़ा अर्थ उसमें भरना चाहता है और कहीं-कहीं उसने भाषा के अच्छे प्रयोग भी किये हैं लेकिन कहीं-कहीं अपनी विलक्षण स्वच्छंदता की प्रवृत्ति के कारण खड़ीबोली के व्याकरण सम्मत रूप की अव-हेवलना भी हुई है। जैसे—

शक्ति दो बल दो पिता

जन दुख के भार से मन थकने आय

पैरों में कुली की सी लपकती चाल छटपटाय

\+ + +

तुमसे मिला है जो विक्षत जीवन का हमें दाय

उसे क्या करें ?

तुमने जोरी है अनाहत जिजीविषा

उसे क्या करें ? कहीं अपने पुत्रों में छोटे

भाइयों के लिए यही कहो।

—रघुवीर सहाय

कुछ प्रयोगवादी कवियों ने भाषा को जनसाधारण के समीप लाने का प्रयास भी किया है परन्तु उनकी भाषा में शिथिलता ही अधिक मात्रा में है; जैसे—

सरग था ऊपर

नीचे पताल था

अपच के मारे बहुत बुरा हाल था

दिल दिमाग भुस का, खद्दर का खाल था

—नागार्जुन

उक्त विवेचन का अभिप्राय यह नहीं है कि नयी कविता की भाषा मूल्यहीन है और उसमें गति के स्थान पर ठहरव तथा सहजता के स्थान पर दुर्बोधता है क्योंकि कुछ प्रसंगों में तो नयी कविता की भाषा भी लाक्षणिकता और शुद्धता की दृष्टि से सराहनीय जान पड़ती है। समीक्षक कहते हैं 'नयी कविता की भाषा में सहजता का प्रवाह, सादगी का सौन्दर्य, स्थिति स्थापकता, नवीन भाव धरातलों को व्यक्त करने की क्षमता और अभिव्यक्ति का संयम प्रभूत मात्रा में है।' यहाँ स्वाभाविक माधुर्य, अनुपम व्यंजना और सरस शब्दावली से पूर्ण निम्नलिखित पंक्तियाँ दर्शनीय हैं—

पीके फूटे आज प्यार के पानी बरसा री।

हरियाली छा गई हमारे, सावन सरसा री।

बादल आये आसमान में, धरती फूली री।

अरी सुहागिन भरी माँग में भूली भूली री।

बिजली चमकी, भाग सखी री, दादुर बोले री।

अन्ध प्राण ही बहो, उड़े पंछी अनमोले री।

—भवानी प्रसाद मिश्र

प्रयोगवादी काव्यधारा या नयी कविता की भाषा में सांकेतिकता भी है और कवि संकेतों की योजना द्वारा सरल एवं सादे विधान का आकर्षण भी द्विगुणित कर देता है। उदाहरणार्थ—

सामने

जूते पर जूता पड़ा है

लगा—जैसे पंजों पर पंजा किसी ने रख दिया हो

दुख आया जी

उफ उहूँ

ठीक कर दूँ

छिः

होगा

बिना पढ़े पुस्तक के पाँच छः पृष्ठ पलट गया

फिर सहसा

पंजे पर अपना ही पंजा धर कर देखा

दर्द हुआ

उठा, और जूते पर से तिरछा जूता हटा दिया।

—जगदीश गुप्त

प्रयोगवादी काव्यधारा या नयी कविता के छन्दविधान में भी पर्याप्त नवीनता है और उसमें शब्द की लय के स्थान पर अर्थ की लय का ध्यान रखा गया है तथा मुक्त छन्द का ही अधिक प्रयोग हुआ है। इस प्रकार नयी कविता गद्य के पर्याप्त समीप भी पहुँच गयी है; जैसे—

कर सको घृणा—

क्या इतना

रखते हो अखंड तुम प्रेम

जितनी अखंड हो सके घृणा

उतना प्रचंड
रखते क्या जीवन का व्रत नेम
प्रेम करोगे सतत ? कि जिससे
उससे उठकर ऊपर बह लो—
—गजानन माधव मुक्तिबोध

प्रयोगवाद या नयी कविता का अप्रस्तुत विधान भी नूतन और वैविध्य-पूर्ण है तथा उसमें जीवन के विभिन्न क्षेत्रों से उपमानों का चयन भी किया गया है। सत्य तो यह है कि नया कवि चन्द्रमा और कमल आदि रूढ़ उपमानों को सर्वथा त्याज्य मानता है और वह सर्वथा नवीन उपमानों का प्रयोग करता है। साथ ही प्रतीक और बिम्ब विधान उसके कवि कर्म के आवश्यक उपादान हैं और वह सर्वदा नवीन प्रतीकों के अन्वेषण में लगा रहता है। इस प्रकार प्रयोगवादी कवि एक मध्यमवर्गीय गृहिणी का जीवन चित्र अंकित करते हुए कहता है—

थर्मामीटर के पारे सी
चुपचाप जिसमें भावनाएँ चढ़ती उतरती हैं
अखंड कीर्तन की
थकी हुई अस्पष्ट धुन सी
जिसकी जिन्दगी है

+ + + +

प्यार का नाम लेते ही
बिजली के स्टोव सी
जो एकदम सुर्ख हो जाती है।
—सर्वेश्वर दयाल सक्सेना

प्रयोगवाद या नयी कविता का क्रमिक विकास

सामान्यतया समीक्षक इस सम्बन्ध में एक मत नहीं हैं कि प्रयोगवाद का आरम्भ कब से माना जाय और एक ओर तो डॉ० देवीशंकर अवस्थी प्रयोगवाद के बीज छायावादोत्तर कविता में पाते हैं तथा दूसरी ओर डॉ०

नामवर सिंह ने प्रयोगवाद का आरम्भ सन् १९४० ई० के लगभग माना है। इसी प्रकार डॉ० देवराज भी प्रयोगवाद का उदय इस शती के चतुर्थ दशक में मानने के पक्ष में हैं पर प्रयोगवाद की मूल प्रवृत्ति —कथ्य और शिल्प की नवीनता—के दर्शन हमें महाप्राण निराला के काव्य में ही होते हैं। विचारपूर्वक देखा जाय तो महाप्राण निराला की 'वह तोड़ती पत्थर' और कुकुरमुत्ता' आदि कविताएँ प्रयोगवाद के समीप की कृतियाँ ही हैं अतः प्रयोगवाद का अभ्युदय निराला काव्य से मानना ही उचित होगा लेकिन प्रयोगवाद शब्द का प्रचलन कुछ विलम्ब से हुआ।

वस्तुतः हिन्दी में प्रयोगवादी कविता का आरम्भ सन् १९४३ में अज्ञेय जी द्वारा सम्पादित एवं प्रकाशित 'तार सप्तक' नामक काव्य संग्रह से होता है और अज्ञेय प्रयोगवाद के प्रवर्तक माने जाते हैं। इस 'तार सप्तक' में गजानन माधव मुक्तिबोध, नेमिचन्द्र जैन, भारतभूषण अग्रवाल, प्रभाकर माचवे, गिरिजाकुमार माथुर, रामविलास शर्मा और अज्ञेय आदि सात कवियों को स्थान प्रदान किया गया। साथ ही इस काव्य संग्रह की भूमिका में अज्ञेय जी ने प्रयोगवादी काव्यधारा पर प्रकाश डालते हुए कविता को प्रयोग की वस्तु स्वीकार किया है और 'तार सप्तक' में संकलित अन्य कवियों के वक्तव्यों में भी 'प्रयोग' की चर्चा हुई है अतः यह नूतन काव्य प्रवृत्ति प्रयोगवाद कहलाने लगी।

कालान्तर में सन् १९५१ में अज्ञेय जी ने 'दूसरा सप्तक' भी प्रकाशित करवाया और इसमें भवानीप्रसाद मिश्र, शकुन्तला माथुर, हरिनारायण व्यास, शमशेर बहादुर सिंह, नरेश कुमार मेहता, रघुवीर सहाय और धर्मवीर भारती को स्थान प्राप्त हुआ। साथ ही 'प्रतीक' नामक पत्रिका में अज्ञेय के सम्पादकत्व में प्रयोगवादी कविताएँ प्रकाशित होती रहीं और पाटल, दृष्टिकोण, अजन्ता एवं कल्पना आदि पत्र-पत्रिकाओं में भी प्रयोगवादी कविताओं को स्थान प्राप्त हुआ। इधर बिहार में नलिन विलोचन शर्मा, केसरी कुमार और नरेशकुमार ने संयुक्त रूप से अज्ञेय के विचारों का खंडन कर प्रपद्यवाद नामक नयी काव्य प्रवृत्ति को अंकुरित करना चाहा पर विचारपूर्वक देखा जाय तो इस प्रपद्यवाद

में भी 'प्रयोग' के प्रति ही रुझान प्रकट की गयी है अतः प्रपद्यवाद या नकेनवाद को प्रयोगवाद का ही अंग समझना समीचीन जान पड़ता है।

सन् १९५४ से डॉ० जगदीश गुप्त और डॉ० रामस्वरूप चतुर्वेदी के सम्पादन में प्रयोगवादी कविताओं का अर्द्धवार्षिक संग्रह—नयी कविता के नाम से प्रकाशित होने लगा और अब प्रयोगवादी काव्यधारा का नाम 'नयी कविता' पड़ गया। सन् १९५९ में अज्ञेय जी के सम्पादकत्व में 'तीसरा सप्तक' प्रकाशित हुआ और इसमें मदन वात्स्यायन, प्रयागनारायण त्रिपाठी, कीर्ति चौधरी, केदारनाथ सिंह, कुँवरनारायण, विजयदेव नारायण साही और सर्वेश्वरदयाल सक्सेना को स्थान प्राप्त हुआ। इसी प्रकार चन्द्रकुँवर बर्त्वाल, राजेन्द्र किशोर, सूर्यप्रताप सिंह, दुष्यन्तकुमार, महेन्द्र भटनागर, अजितकुमार और सतीश चौबे आदि कवियों ने भी प्रयोगवादी काव्यधारा या नयी कविता को पुष्ट करने में अपना महत्वपूर्ण योग दिया है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि लगभग बीस वर्षों की अवधि में ही पर्याप्त संख्या में प्रयोगवादी कविताएँ प्रस्तुत की गयीं और नयी कविता को पुष्ट करने का प्रयत्न किया गया।

कवि माथुर : प्रयोगवादी काव्य एवं नयी कविता के निर्माता के रूप में

सामान्यतया हिन्दी काव्य जगत में अज्ञेय द्वारा सम्पादित एवं प्रकाशित 'तार सप्तक' (सन् १९४३) द्वारा प्रयोगवादी काव्यधारा का उद्भव माना जाता है और इस 'तार सप्तक' के सात कवियों में श्री गिरिजाकुमार माथुर भी सम्मिलित हैं अतः उन्हें निस्संकोच रूप से प्रयोगवादी कवि कहा जा सकता है। साथ ही 'तार सप्तक' के प्रथम संस्करण में अपने वक्तव्य में स्वयं माथुर जी ने यह लिखा है ध्वनि विधान में मेरे प्रयोग मुख्यतः स्वर ध्वनियों के हैं। ......जहाँ जिस वस्तु का इंगित करना होता है वहाँ उस ध्वनि का उतना ही प्रयोग है।' इसी प्रकार 'तार सप्तक' के दूसरे संस्करण में 'पुनश्च' शीर्षक से माथुर जी ने जो अपना विस्तृत वक्तव्य दूसरी बार दिया है उसमें उन्होंने पुनः यही लिखा है 'आधुनिक बोध की काव्यधारा को प्रारम्भ हुए अब चौथाई शती बीत चुकी है, तार सप्तक जिसकी प्रथम समवेत अभिव्यक्ति था। जो चेतना बिम्ब सन् १९३९–४० में उदित हुआ था वह अब तक हिन्दी कविता

का सम्पूर्ण क्षितिज आच्छादित कर चुका है और अनेक तीखे संघर्ष तथा विरोधी आघातों के पार आकर अपनी विजग सत्ता स्थापित कर चुका है। ······कविता की जिस चेतना का प्रादुर्भाव सन् १९३९–४० में हुआ था उसने पिछली समस्त मान्यताओं को बदल डाला और एक अभूतपूर्व बौद्धिक नवोन्मेष (इंटलेक्चुअल रेनासाँ) को जन्म दिया। पूरी की पूरी मर्यादा प्रति-स्थापित कर दी गयी। इतनी बड़ी तात्विक क्रान्ति हिन्दी की कविता में कभी नहीं आयी थी।······मुझे गर्व है कि मैं उस क्रान्ति बिन्दु पर लेखनी लिए उपस्थित था और मुझ पर तथा मेरे कुछ थोड़े से सहधर्मियों पर आधुनिकता का वह नया उठता हुआ आलोक प्रथम बार पड़ा था।······वास्तव में प्रयोगशीलता के साथ हिन्दी साहित्य में 'आधुनिकता' का समारम्भ हुआ था और पिछले पचीस वर्ष के काव्य विकास को इसी रूप में समझा जाना उचित है।'

श्री गिरिजाकुमार माथुर के उक्त कथन से स्पष्ट हो जाता है कि उन्हें प्रयोगों पर पूर्ण आस्था रही है और उन्होंने स्वयं ही प्रयोगवादी काव्यधारा के साथ अपना घनिष्ठ सम्बन्ध होना स्वीकार किया है। इस प्रकार उन्हें प्रयोग-वादी कवि समझना अनुपयुक्त नहीं जान पड़ता और डॉ० नगेन्द्र का तो यही स्पष्ट मत है कि 'नये युग की तीसरी प्रवृत्ति है प्रयोगवाद, जिसका नाम बाद में चलकर नई कविता पड़ गया। इस नई प्रवृत्ति का विकास करने में गिरिजा कुमार का बहुत बड़ा योगदान है।' साथ ही डॉ० इन्द्रनाथ मदान भी यही कहते हैं 'प्रयोगवादी कवियों में अज्ञेय के अतिरिक्त गिरिजाकुमार माथुर····आदि के नाम लिए जाते हैं।' इसी प्रकार अज्ञेय जी ने 'आज का भारतीय साहित्य' में लिखा है, अब जिसे नई कविता कहा जाने लगा है उसके रूप और मुहावरे के विकास मे गिरिजाकुमार माथुर का निश्चित योग रहा है। किन्तु अपने अमरीका प्रवास से लौटकर उन्होंने जो कविताएँ लिखी हैं उनसे कुछ जान पड़ता है कि वे प्रयोग की एक बँधी लीक में पड़ गये हैं और उस लीक को अति की सीमा तक ले जा रहे हैं।'

यहाँ यह ध्यान में रखना होगा कि अधिकांश समीक्षकों के सदृश्य हमने भी प्रयोगवाद और नयी कविता को पृथक्-पृथक् न मानकर दोनों को

एक ही माना है और स्वयं माथुर जी ने नव काव्य की प्रगति का लेखा-जोखा प्रस्तुत करने के पश्चात् यही कहा है 'उमे प्रयोगवाद और नयी कविता के विलग निकायों में देखना असंगत है।' इस प्रकार यदि श्री गिरिजाकुमार माथुर को 'नयी कविता' के कवियों में स्थान प्रदान किया जाता है तो उनका प्रयोगवादी काव्यधारा से भी सहज ही सम्बन्ध स्थापित हो जाता है और स्वयं कवि माथुर के उद्‌गारों तथा अन्य कई विचारकों के मतों को ध्यान में रखकर हम श्री गिरिजाकुमार माथुर को प्रयोगवाद या नयी कविता के कवियों में महत्वपूर्ण स्थान प्रदान करने के पक्ष में हैं। इसके बावजूद कुछ ऐसे समीक्षक भी हैं जो पूर्वाग्रह के कारण या फिर माथुर की कृतियों का रसास्वादन करने में असमर्थ रहने के फलस्वरूप कवि माथुर की भावभूमि के सम्बन्ध में अपने विचित्र मत प्रस्तुत करते हैं अतः इस सम्बन्ध में कुछ विचार प्रस्तुत करना आवश्यक हो जाता है।

समीक्षकों के इस समुदाय के अन्तर्गत एक वर्ग उन समीक्षकों का है जो श्री गिरिजाकुमार माथुर को किसी भी काव्यप्रवृत्ति से सम्बन्धित न मानकर श्री विश्वम्भर 'मानव' के शब्दों में यही कहते हैं 'वास्तविक स्थिति यह है कि मंजीर के रचनाकाल में ये छायावाद से प्रभावित रहे। नाश और निर्माण पर प्रगतिवाद का स्पष्ट प्रभाव पाया जाता है। धूप के धान और शिलापख चमकीले प्रयोगवाद से प्रभावित काव्य कृतियाँ हैं। काव्य की किसी भी क्रांतिकारी धारा के जन्मदाताओं में से ये कभी नहीं रहे। उसके प्रतिष्ठित होने पर बहुत सोच-समझकर इन्होंने उसमें योग दिया है.....९४१ में छायावाद के गीत गाना, १९४६ में प्रगतिवादी प्रचार में योग देना और १९५५ मे प्रयोगवादी गुट की ओर खिसक आना, क्रांतिबिन्दु पर लेखनी लेकर उपस्थित होना नहीं कहा जा सकता। अतः इनकी गणना वादों के संस्थापकों में नहीं, उनके अनुकरणकर्ताओं में सदैव रहेगी।' इसी प्रकार कुछ ऐसे समीक्षक भी हैं जों श्री गिरिजाकुमार माथुर की समाजपरक रचनाओं के आधार पर उन्हें प्रगतिवादी परम्परा में स्थान प्रदान करते हैं और कवि माथुर को प्रगतिवादी कवि सिद्ध करने के लिए उनकी कृतियों में से कुछ इस प्रकार के उदाहरण प्रस्तुत करते हैं—

हमने जीवन की ज्वाला में है पाप जलाया सदियों का
इस महायज्ञ से निकला है यह कुलिश नवीन अस्थियों का
मेरी मानवता पर रक्खा गिरि-सा सत्ता का सिंहासन
मेरी आत्मा पर बैठा है विषधर-सा समन्ती शासन
मेरी छाती पर रखा हुआ साम्राज्यवाद का रक्त कलश।

और भी—

इस लाली का मैं तिलक करूँ हर माथे पर
दूँ उन सबको जो पीड़ित हैं और मेरे समान
दुख, दर्द, अभाव भोग कर भी जो झुके नहीं
जो अन्यायों से रहे जूझते वक्ष तान
जो सजा भोगते रहे सदा सच कहने को
जो प्रभुता पद-आतंकों से नत हुए नहीं
जो विलग रहे पर कृपा न माँगी घिघियाकर
जो किसी मूल्य पर शरणागत हुए नहीं।

इस प्रकार कुछ उदाहरण प्रस्तुत कर कतिपय समीक्षकों ने माथुर जी को प्रगतिवादी कवि मानते हुए यही मत प्रकट किया है 'ये पंक्तियाँ इस बात का प्रमाण हैं कि अन्याय, अनाचार, शोषण और अत्याचार से संघर्ष करने, निर्भीकतापूर्ण सत्य का उद्‌घाटन करने, प्रभुता और सत्ता के सम्मुख न झुकने तथा उत्पीड़ित मानवता के प्रति प्रेम करने का कवि समर्थन करता है।····माथुर वर्तमान युग के कुशल शिल्पी और समाजवादी यथार्थ की व्यंजना करनेवाले उच्चकोटि के प्रगतिवादी कवि हैं।'

समीक्षकों का एक वर्ग ऐसा भी है जो कवि माथुर को पूरी तरह प्रगतिवादी न मानकर यही कहता है कि उन्होंने प्रगति तथा प्रयोग दोनों के समन्वय की चेष्टा की है। इस प्रकार डा० शिवकुमार मिश्र ने अपने शोध-प्रबन्ध 'नया हिन्दी काव्य' में प्रयोगवादी काव्यधारा का विवेचन करने के पश्चात् एक पृथक अध्याय में 'मध्यवर्ती' कवियों का मूल्यांकन किया है और उन्होंने श्री गिरिजाकुमार माथुर को प्रयोगवादी काव्यधारा में स्थान न प्रदान

कर 'मध्यवर्ती' कक्षा में उपविष्ट करने का प्रयत्न किया है। कालांतर में उन्होंने पुनः अपने एक निबन्ध 'छायावादोत्तर काव्य' के प्रथम अनुच्छेद में लिखा है 'कुछ ऐसे कवियों का काव्य भी इस नई काव्यप्रगति के एक महत्व-पूर्ण अंश के रूप में सामने आता है जो एक ओर 'प्रगति' तथा प्रयोग दोनों की अनेकानेक सीमाओं को स्पर्श करते हुए तथा दूसरी ओर अपने मूल रूप में दोनों को ही अतिवादी घोषित करते हुए एक से स्वस्थ सामाजिक विचार तथा दूसरे से अभिव्यक्ति की नई शैली तथा शिल्प ग्रहण कर इन दोनों के स्वस्थ समन्वय को ही नये काव्य की वास्तविक दिशा सूचित करते हैं।' इस सन्दर्भ में डा० मिश्र ने जो पादटिप्पणी दी है उसमें कहा गया है कि 'प्रथम तथा द्वितीय सप्तकों के अनेक कवियों—उदाहरणार्थ गिरिजाकुमार माथुर, शमशेर बहादुर सिंह, भारतभूषण अग्रवाल, भवानी प्रसाद मिश्र, नेमिचंद्र जैन आदि की गणना इसी प्रकार के कवियों के अन्तर्गत की जा सकती है। इस प्रकार डा० शिवकुमार मिश्र ने कवि माथुर को न तो विशुद्ध प्रगतिवादी कवि ही माना है और न उन्हें विशुद्ध प्रयोगवादी कवि ही कहा है।

विचारपूर्वक देखा जाय तो इन समीक्षकों के मत अनुपयुक्त एवं एक-पक्षीय ही जान पड़ते हैं और श्री गिरिजाकुमार माथुर के समग्र काव्य का अनुशीलन करनेवाले पाठक इस तथ्य से सहज ही परिचित हो जाते है कि माथुर जी न तो छायावादी कवि ही कहे जा सकते हैं और न उन्हें प्रगतिवादी कवि ही माना जा सकता है। कवि माथुर की काव्य-साधना का क्रमिक विकास स्पष्ट करते समय हम यह सिद्ध कर चुके हैं कि अपनी प्रथम काव्य कृति मंजरी (सन् १९४१) से लेकर अब तक प्रकाशित कृतियों में से अंतिम काव्य संकलन 'जो बंध नहीं सका' (सन् १९६८) तक उनकी कविताओं में प्रयोगवाद का स्वर ही प्रबल रूप से रहा है। यह हम मानते हैं कि माथुर जी ने छायावादी काव्य का अध्ययन किया और उन्होंने प्रारम्भ में ब्रजभाषा में काव्य रचना करने के साथ-साथ कुछ कवितायें छायावादी पद्धति की भी लिखी थीं पर इस प्रकार की प्रायः सभी कविताएँ नष्ट कर उन्होंने यह संकल्प किया कि जब तक वह अपनी मौलिक राह नहीं खोज लेंगे कोई कविता नहीं लिखेंगे। इस प्रकार सन् १९३७ से ही माथुर जी ने कविता में

नवीन प्रयोग करना प्रारम्भ कर दिया था और सन् १६३७ में लिखी गयी उनकी कविता 'तीसरा प्रहर' में तो छायावादी भावबोध एवं शैली शिल्प से विच्छेद का स्पष्ट संकेत मिलता है। अतएव कवि माथुर के प्रथम कविता संग्रह 'मंजीर' में छायावादी प्रभाव सिद्ध करना समीक्षकों के दुराग्रही स्वभाव का ही परिचायक है।

कवि माथुर को प्रगतिवादी परम्परा में स्थान प्रदान करना और उनकी कविताओं में प्रगतिवादी तत्त्वों की खोज करना भी उचित नहीं है क्योंकि श्री गिरिजाकुमार माथुर ने राजनीतिक साम्यवादी सिद्धान्तों को कभी भी स्वीकार नहीं किया है और सामाजिक जीवन की ओर आकृष्ट होते हुए भी वह कम्युनिज्म के प्रचारक नहीं हैं। यहाँ यह भी स्मरणीय है कि प्रयोगवादी काव्यधारा में वैयक्तिकता की भावनाओं को प्रधानता प्राप्त होते हुए भी हमारे अधिकांश प्रयोगवादी कवि आस्था, विश्वास, उत्साह, साहस और संकल्प आदि विशेषताओं से रहित नहीं थे - यही कारण है कि कुछ प्रयोगवादी कवियों ने तो व्यक्तिवादी चेतना से ऊपर उठकर सामाजिक यथार्थ के स्वर पर दुर्निवार परिस्थितियों के सत्य को ग्रहण किया हैं और 'सर्वजन-हिताय' की प्रतिष्ठा के लिए उनकी पवित्र वाणी निःसृत भी होती है। इस प्रकार प्रयोगवादी काव्यधारा के प्रवर्तक अज्ञेय ने भी 'बावरा अहेरी' में कहा है—

> कहा तो, सहज पीछे लौट देखेंगे नहीं
> पर नकारों के सहारे कब चला जीवन ?
> स्मरण को पाथेय बना दो
> कभी तो अनुभूति उभरेगी
> प्लावन वा सान्द्र भी घन-बन।

वस्तुत. प्रयोगवादी काव्य और नयी कविता में भी समष्टिवादी एवं व्यापक मानवीयता के गुणों से युक्त उक्तियों के दर्शन होते हैं पर इसका अर्थ यह नहीं है कि उन्हें प्रगतिवादी मान लिया जाय और यदि प्रगति का सामान्य अर्थ ही ग्रहण करना है तो फिर हमारे सभी कवियों में कुछ न कुछ प्रगति-

शील तत्व अवश्य दृष्टिगोचर होंगे लेकिन सबको प्रगतिवादी नहीं माना जाता। सामान्यतया प्रगतिवादी साहित्यकार वही है जो मार्क्स के दर्शन को अपनाता है पर श्री गिरिजाकुमार माथुर ने तो मार्क्स के दर्शन को ग्रहण ही नहीं किया अतः उन्हें प्रगतिवादी कवि मानना किसी भी दृष्टि से उचित न होगा। यहाँ यह भी ध्यान में रखना चाहिए कि कवि माथुर की कुछ कविताओं में ही सामाजिक यथार्थ की अभिव्यक्ति हुई है और किसी भी कवि की कुछ इनीगिनी कविताओं के आधार पर यह निर्णय नहीं प्रकट किया जाता कि वह अमुक विशेष धारा का कवि है। अतएव डा० शिवकुमार मिश्र का यह मत कि माथुर जी मध्यवर्गीय स्थिति अर्थात् प्रगति और प्रयोग के मध्य की स्थिति के कवि हैं, अनुपयुक्त ही प्रतीत होता है।

सर्वाधिक हास्यास्पद दृष्टिकोण तो श्री विश्वम्भर मानव का है और उनके विचारों का अनुशीलन करने पर स्पष्ट हो जाता है कि माथुर जी को किसी भी काव्य प्रवृत्ति में स्थान न देकर उन्हें छायावादी, प्रगतिवादी एवं प्रयोगवादी काव्य धारा का कवि समान रूप से मानते हैं लेकिन हमने पहले ही यह सिद्ध कर दिया है कि कवि माथुर की काव्यधारा न तो छायावाद से प्रभावित हुई है और न उन्होंने मुक्त कंठ से प्रगतिवाद को ही अपनाया है। इसी प्रकार कवि माथुर प्रगति और प्रयोग के मध्य की स्थिति के कवि भी नहीं हैं। आश्चर्य की बात तो यह है कि मानव जी ने सन् १९५५ से कवि माथुर को प्रयोगवादी कवियों की ओर आकृष्ट माना है पर यह मत युक्तिसंगत नहीं है क्योंकि उनकी प्रसिद्ध प्रयोगवादी काव्यकृति 'धूप के धान' का प्रकाशन भले ही सन् १९५५ में हुआ हो लेकिन इस काव्यसंकलन में संगृहीत कविताएँ सन् १९४५ से सन् १९५४ के मध्य लिखी गयीं। इतना ही नहीं 'धूप के धान' से पूर्व प्रकाशित माथुर जी की काव्यकृतियों में भी प्रयोगवादी स्वर ही प्रबल रूप से है।

स्वयं कवि माथुर ने 'तारसप्तक' के द्वितीय संशोधित परिवर्धित संस्करण में 'पुनश्च' के अन्तर्गत व्यक्त अपने दृष्टिकोण में कहा है कि 'मैं १९४० तक कितने ही प्रयोग कर अपना स्पष्ट मार्ग निर्धारित कर चुका था। अप्रैल

१९४१ में मेरा पहला संग्रह 'मंजीर' प्रकाशित हो चुका था और आधुनिक बोध के अनुरूप मैं नगरीय संवेदना, इतिहास की सांस्कृतिक दृष्टि तथा भाषा छन्द, बिम्ब और ध्वनि विधान के नवीन रूपाकार की प्रस्तावना रचनाओं में कर चुका था। जुलाई १९४१ में मैंने अँगरेजी में एक लम्बा लेख लिखा था 'द थ्योरी ऑव न्यू एक्सपेरिमेंटलिज्म इन हिन्दी पोएट्री।' सत्य तो यह है कि माथुर जी सन् १९३७ में ही नवीन प्रयोग करने लगे थे और सन् १९३८ तक तो उन्हें इस क्षेत्र में पर्याप्त प्रौढ़ता प्राप्त हो चुकी थी। उदाहरणार्थ; सन् १९३८ में रचित उनकी 'प्रेम से पहले' नामक एक कविता का यह अंश दर्शनीय है—

अब तो तुम्हारी सुधि
मुझको हुई है हिमालय की लकीर सी
उस दिन की बात जब
उछले थे धीमे ही
चलने से रेती में
चंचल चुपचाप चरण
मिट ही चुके हैं वे बिखरे निशान
किंतु
संस्मृति के सूने कठोर शिलाखंड पर
वज्र बन धँसे हैं वे तेरे इस्पात चिह्न
मानों पत्थर भी गल के मोम बन गया था तब
और सूख जाने पर
जैसे के तैसे निशान बन रहे प्राण।

इस प्रकार सन् १९४५ के पूर्व ही कवि माथुर अनेक सफल प्रयास कर चुके थे और इस संबंध में उदाहरण के लिए मंजीर की थोड़ी दूर और चलना है, याद यह हो आई मुझको पुरानी, बिदा, आई बरसात आज सेजों पर आ जाना तथा रेल का पहिया आदि कविताएँ दर्शनीय हैं। कहने का अभिप्राय यह है कि अपनी काव्यसाधना के प्रारम्भिक युग में ही कवि माथुर

प्रयोगवाद की ओर आकृष्ट हो चुके थे और डा० प्रतापनारायण टंडन का तो यही कहना है 'जहाँ तक प्रयोगवादी कवियों का सवाल है, कालक्रम की दृष्टि से हिन्दी में प्रारम्भिक प्रयोग करनेवाले (भाषा, शैली, छंद, भाव आदि क्षेत्र में) गिरिजाकुमार माथुर हैं।'....माथुर के बाद के नये प्रयोग करनेवाले कवि प्रभाकर माचवे, केदारनाथ अग्रवाल, शमशेरबहादुर सिंह, रामविलास शर्मा आदि थे। जिन्होंने इस दिशा में प्रयास किया। सन् १९४० से १९४३ तक बहुत से कवि इस ओर बढ़ चुके थे। और ऐसे ही कवियों में अज्ञेय भी हैं।'

इससे स्पष्ट हो जाता है कि श्री गिरिजाकुमार माथुर प्रयोगवाद के प्रारम्भिक कवि हैं और 'तार सप्तक' के प्रकाशित होने के दो वर्ष पूर्व ही उनकी कविताओं का संग्रह 'मंजीर' प्रकाशित हो चुका था जिसमें उनके अनेक नवीन और सफल प्रयोग मिलते हैं। अतएव डा० नगेन्द्र का यह मत निस्संदेह युक्तिसंगत है कि 'गिरिजाकुमार नये कवियों में अग्रणी हैं, इसका प्रतिवाद नहीं किया जा सकता—नई कविता में जो स्थायी काव्यतत्व है उसका वे प्रतिनिधित्व करते हैं, इसमें भी संदेह नहीं किया जा सकता। ऐतिहासिक तथा साहित्यिक दोनों दृष्टियों से उनका स्थान अज्ञेय के समकक्ष है।...... ... शिल्प की दृष्टि से गिरिजाकुमार का पलड़ा और भी भारी है—अज्ञेय की अपेक्षा इन्हें अर्थ सौन्दर्य की पहचान अधिक है और नाद सौन्दर्य की दृष्टि से तुलना का प्रश्न ही नहीं उठता क्योंकि समर्थ कवियों में अज्ञेय का यह पक्ष सबसे अधिक दुर्बल है।....कालान्तर में प्रचार का कोलाहल शान्त होने पर नई कविता का इतिहास जब वस्तुपरक दृष्टि से लिखा जायगा, तो उसके निर्माताओं में गिरिजाकुमार का स्थान अन्यतम रहेगा।'

माथुर की कविता में प्रयोगवादी प्रवृत्तियाँ—

हमने कई प्रमाण प्रस्तुत कर श्री गिरिजाकुमार माथुर को प्रारम्भिक पर समर्थ प्रयोगवादी कवि और नयी कविता के निर्माताओं में अग्रगण्य ही माना है तथा हम यहाँ यह स्पष्ट कर देना भी उचित समझते हैं कि कवि माथुर की काव्य कृतियों में प्रयोग की अधिकांश प्रमुख प्रवृत्तियों के दर्शन भी सरलता से होते हैं। इस कथन की पुष्टि हम यहाँ कुछ उदाहरण देकर करेंगे।

(१) वैयक्तिकता की प्रधानता—यद्यपि आधुनिक हिन्दी साहित्य की एक प्रमुख विशेषता वैयक्तिकता का अभिव्यक्तीकरण है और भारतेन्दु, द्विवेदी एवं छायावादी युग में भी वैयक्तिकता की प्रधानता रही है लेकिन प्रयोगवादी कवि तो विशेष रूप से आत्मनिष्ठ और आत्मकेन्द्रित ज्ञान पड़ते हैं। इस प्रकार प्रयोगवादी कवियों की काव्यसाधना अतर्मुखी रही है और नितांत वैयक्तिक क्षणों में भोगे हुए जीवन की सूक्ष्म अनुभूतियाँ ही उनकी कविता के प्रधान विषय हैं। अतएव कवि माथुर ने भी अपनी उक्तियों में कहीं-कहीं वैयक्तिक भावनाओं को प्रधानता प्रदान की है; जैसे—

आज अचानक सूनी सी संध्या में
जब मैं यों ही मैले कपड़े देख रहा था,
किसी काम में जी बहलाने,
एक सिल्क के कुर्ते की सिलवट में लिपटा,
गिरा रेशमी चूड़ी का,
छोटा-सा टुकड़ा,
उन गोरी कलाइयों में जो तुम पहिने थीं
रग भरी उस मिलन रात में।
मैं वैसा का वैसा ही
रह गया सोचता पिछली बातें।

(२) यथार्थवाद की अधिकता—प्रयोगवादी कवियों के प्रेम का स्वरूप मांसल ही है और यौवन वर्जनाओं एवं कुण्ठित वासनाओं से पीड़ित होने के कारण उन्होंने सर्वत्र अथवा बहुधा काम प्रवृत्तियों को ही केन्द्रबिंदु माना है। स्वयं अज्ञेय ने 'तारसप्तक' की भूमिका में यह स्वीकार किया है कि आधुनिक युग का सामान्य व्यक्ति सेक्स सम्बन्धी वर्जनाओं से आक्रान्त है। उसका मस्तिष्क दमन की गयी सेक्स की भावनाओं से पीड़ित है। इसी कारण न तो उसमें प्रेम का सामाजिक रूप ही है और न उसकी सूक्ष्म भावात्मकता है। उस पर मनोविश्लेषण विज्ञान का बहुत प्रभाव है। मनोविश्लेषण शास्त्र के प्रभाववश अचेतन की कुंठाओं का प्रकाशन उसका उद्देश्य है। वह अपनी दमित वासना को जो बादल को देखकर उद्दीप्त हो उठती है अति यथार्थवादिता

के कारण नग्न रूप में सामने रखता हुआ जरा भी संकोच नहीं करता।' इस प्रकार कवि माथुर की उक्तियों में भी कहीं-कहीं अति यथार्थवादिता के दर्शन होते है; जैसे—

उन्हीं रेडियम के अंकों की लघु छाया पर
दो छाँहों का वह चुपचाप मिलन था,
उसी रेडियम की हल्की छाया में,
चुपके का वह रुका हुआ चुम्बन अंकित था—
कमरे की सारी छाहों के हल्के स्वर-सा
पड़ती थीं जो एक-दूसरे में मिल गुँथकर
सूनी-सी उस आधी रात—

(३) क्षणानुभूति, नैराश्य एवं भोगवाद का चित्रण—प्रयोगवादी कवि बहुधा निराशा के कुहासे से आवृत्त भी रहा है और उसका दृष्टिकोण यदि एक ओर भोगवादी है तो दूसरी ओर वह क्षणवादी तथा निराशावादी ही जान पड़ता है। प्रयोगवाद के प्रवर्तक अज्ञेय ने एक स्थल पर यही कहा है कि जीवन में एक बार जब दुख की रेखा अंकित हो जाती है तो वह अमिट बनी रहती है—

एक रेखा जिसे
न बदला जा सकता है न मिटाया जा सकता है
न स्वीकार द्वारा ही डुबा दिया जा सकता है
क्योंकि वह दर्द की रेखा है
और दर्द
स्वीकार से भी मिटता नहीं है।

इस प्रकार श्री गिरिजाकुमार माथुर की कविताओं में भी क्षणानुभूति एवं भोगवादी प्रवृत्तियों के दर्शन होते है; जैसे—

घन घुमड़न भुज बन्धन के उन्माद सी
बढ़ती आती रात तुम्हारी याद सी।

और भी—

कितना सुख पाया है तुमसे ओ चाँदनी
देह चूर रस से है, मन में है चाँदनी।

(४) अति बौद्धिकता—सामान्यतया प्रयोगवादी काव्यधारा में रागात्मकता के स्थान पर अस्पष्ट विचारात्मकता है और प्रयोगवाद के प्रशंसकों का कहना है कि आज के बुद्धिवादी वैज्ञानिक युग में जीवन सत्य की सही अभिव्यक्ति बौद्धिकता से ही सम्भव है। डा० धर्मवीर भारती के शब्दों में प्रयोगवादी कविता में भावना है, किन्तु हर भावना के सामने एक प्रश्न चिन्ह लगा हुआ है। इसी प्रश्न चिन्ह को आप बौद्धिकता कह सकते हैं। सांस्कृतिक ढांचा चरमरा उठा है और यह प्रश्न चिन्ह उसी की ध्वनि मात्र है।' इस प्रकार माथुर की कविता मे भी कई स्थलों पर अतिबौद्धिकता का चित्रण भी हुआ है; उदाहरणार्थ—

गहरी समाधियाँ पड़ी हैं
अस्तित्वों पर
शब्दों के बाँधे
अशब्दों का नाता है
जितना जो भंगुर है
सत्य के समीप वही
यह अशेष से अशेष तक की परिभाषा है
कितनी मरीचिकाएँ
अटकी हैं विराम बनी
कितनी सत्ताएँ सिद्ध हुईं
मिटने के बाद
किसी राज उत्सव में भटकते अपरिचित-सा
मैं ही खुद लगता हूँ अपनी सुदूर याद

(५) शैलीगत नवीनता—प्रयोगवादी काव्यधारा या नयी कविता में हमें शैलीगत नवीनता के भी दर्शन होते हैं और उपमानों की नवीनता रूपक विधान एवं आलंकारिकता के सम्बन्ध में इन प्रयोगवादी कवियों ने नितान्त अलौकिक नवीनता को खोजना चाहा है। इस प्रकार माथुर जी की

कविता में भी सर्वथा नवीन उपमानों का प्रयोग हुआ है और यहाँ यह भी ध्यान में रखना होगा कि माथुर सन् १९३८ से ही नये उपमानों की योजना करने लगे थे। यहाँ हम शैलीगत नवीनता के उदाहरणस्वरूप सन् १९४६ में प्रकाशित कवि माथुर के कवितासंग्रह 'नाश और निर्माण' की एक कविता 'अधूरा गीत' से कुछ पंक्तियाँ उद्धृत कर रहे हैं—

अब आये बसन्त
कितने सहस्र वर्षों की गमी बना आया,
बेहिस, अवाक
ये शिशिर सरीखी बादल भरी हवा चलती
रोमों की यादें टूट रहीं
ये मुझे उड़ाती ले जातीं वर्षों पीछे,
जाड़ों की संध्या का वह अंतिम प्रहर,
रात, संदली चाँदनी से धीरे रचती जाती
जब कालिदास की नगरी में
उन गीतों की छाया में मैं भी बैठा था,
पहिले भी—अंतिम बार वही
जग ने जिसको मिटने पर ही है पहिचाना
वह चित्र न मुझ पर से उतरा,
उसको ही पूरा करने में,
मुझको भी पूर्ण न होने का वरदान मिला
मैं चलता जाऊँगा इतिहासों के ऊपर
यद्यपि पाषाण हुआ जाता।

उक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि कवि माथुर की काव्यकृतियों में प्रयोगवादी काव्यधारा या नयी कविता की प्रमुख प्रवृत्तियाँ निखरे हुए रूप में दृष्टिगोचर होती हैं।

कवि माथुर की प्रणय भावना और वेदनानुभूति

प्रारम्भ

आधुनिक कालीन सुप्रसिद्ध कवि प्रसाद ने उचित ही लिखा है—

प्रेम यज्ञ में स्वार्थ और कामना हवन करना होगा
तब तुम प्रियतम स्वर्ग विहारी होने का फल पाओगे ;
प्रेम पवित्र पदार्थ, न इसमें कहीं कपट की छाया हो
इसका परिमित रूप नहीं जो व्यक्ति मात्र में बना रहे।
क्योंकि यही प्रभु का स्वरूप है जहाँ कि सबकी समता है।

वास्तव में प्रेम उक्त महत्ता का पूर्ण अधिकारी है और भले ही कुछ मनोविश्लेषक इसे आदिम सहज प्रवृत्ति के रूप में स्वीकार कर उसे केवल काम वासना का ही अन्यतम रूप समझें पर प्रेम इतना संकीर्ण न होकर अपना विश्व व्यापी महत्व रखता है। आचार्य बलदेव उपाध्याय के शब्दों में 'मानव हृदय की अत्यंत कोमल वृत्ति का नाम है प्रेम। मानव जीवन में इसका जितना व्यापक प्रभाव है, काव्य जगत में उतना ही इसका अधिक सत्कार है। मानव ही क्यों, प्राणिमात्र में इसका विशाल साम्राज्य है। हृदय को स्निग्ध बनाने का यह परम उपादेय साधन है। अत: मानव जीवन को अपने काव्यों में चित्रित करने वाले कवि जन सब भुला सकते हैं, परन्तु प्रेम को कभी भी नहीं भुला सकते : प्रेम की गाथा गाने वाले कवियों की गणना कवि

मंडली में सबसे अधिक हैं। चाहे पाश्चात्य साहित्य की समीक्षा की जाय अथवा प्राच्य साहित्य का अनुशीलन किया जाय, प्रेम की महिमा का सर्वत्र प्रचुर प्रचार दृष्टिगोचर होता है।

हमारे साहित्य के महारथी कविगण प्रेम की प्रशस्ति में किसी भी साहित्य के कवियों से पीछे नहीं हैं। उन्होंने जो प्रेम रूप दिखलाया है, वह नितान्त निखरा हुआ, विशुद्ध तथा निष्कलंक है। प्रेम के सच्चे रूप की जानकारी के लिए हमें उसे 'काम' से पृथक करना होगा। काम भी हृदय की ही वृत्ति है. और एक प्रमुख वृत्ति है, परन्तु दोनों की कल्पना में जमीन-आसमान का अंतर है। स्वार्थ की भावना से उद्‌बुद्ध वृत्ति की संज्ञा है—काम। काम को आश्रय देने वाला व्यक्ति कभी परमार्थ की ओर देखता नहीं, वह हमेशा अपने ही क्षुद्र स्वार्थ की सिद्धि के लिए प्रयत्नशील रहता है—वह इस बात पर कभी ध्यान ही नहीं देता कि उसके आचरण का प्रभाव लोगों पर कैसा पड़ता है। वह सदा अपने में ही केन्द्रित रहता है। उसका 'स्व' नितान्त क्षुद्र होता है। वह उसी तक सीमित रहता है। इसके विपरीत 'प्रेम' बड़ी ही उदात्त तथा उदार वृत्ति है। प्रेम कभी स्वार्थमूलक नहीं होता। प्रेम का पुजारी अपने हृदय मन्दिर में अपने इष्टदेव की उपासना में ही सदा अनुरक्त रहता है। उसकी पूजा का होता है एक आधार उसकी कामना का होता है एक आलम्बन, उसकी अभिलाषा का होता है, एक आश्रय। वह अपना व्यक्तित्व अपने आराध्य में मिटा देता है। अपने इष्टदेव के सामने नतमस्तक होकर वह अपना अस्तित्व ही मिटाये बैठा रहता है। चैतन्य चरितामृत में भक्त प्रवर कृष्णदास गोस्वामी ने इन दोनों वृत्तियों का पार्थक्य बड़ी सुन्दरता से अभिव्यक्त किया है कि सांसारिक वस्तुओं में जो हमारी अभिलाषा लगी रहती है वह तो होती है काम और भगवान अखिल रसामृतमूर्त्ति श्रीकृष्ण चन्द्र के चरणारविन्द में जो हमारी हार्दिक वृत्ति लगी रहती है उसी का नाम है—प्रेम। काम बन्धन का साधन है, तो प्रेम मोक्ष का उपाय है।'

सम्भवतः प्रेम की इसी विशिष्टता के कारण प्रायः सभी देशों के साहित्य ग्रंथों में प्रेमाभिव्यक्ति को प्रधानता दी गयी और हमारे हिन्दी कवियों

ने भी अपनी कृतियों में प्रणय चित्रों को अवश्य न्यूनाधिक रूप में अंकित किया। इस प्रकार न केवल प्राचीन हिन्दी साहित्य अपितु आधुनिककालीन काव्य ग्रंथों में भी प्रेम की छटा दृष्टिगोचर होती है लेकिन हमारे आधुनिक कवियों ने प्रेम का परम्परागत चित्रण नहीं किया। कदाचित संस्कृत नाटकों व अँग्रेजी प्रेमाख्यानों से प्रभावित होने के कारण वर्तमान हिन्दी काव्यधारा में प्रेम का स्वच्छंद और शुद्ध प्रवाह प्रवाहित हो रहा है तथा हमारे आधुनिक कवियों ने तो प्रेम को सर्वव्यापक माना है। यही कारण है कि प्रेम की व्यापकता और प्रभाव का वर्णन अब उसे समुद्रवत बतलाकर किया जाता है जैसा कवि निराला, ने अपनी कृति 'पचवटी प्रसंग' में राम द्वारा कहलाया भी है—

> प्रेम का पयोधि तो उमड़ता है
> सदा ही निःसीम भूपर।
> प्रेम की महोर्मिमाला तोड़ देती क्षुद्र ठाट,
> जिसमें संसारियों के सारे क्षुद्र मनोवेग
> तृण सम बह जाते हैं।

इतना ही नहीं अब मानव जीवन के लिए आवश्यक बातों में प्रेम को सर्वाधिक महत्व दिया जाता है और पंतजी ने तो मनुष्य की मनुष्यता का सबसे बड़ा चिह्न भी उसे ही माना है—

> विद्या, वैभव, गुण विशिष्टता
> भूषण हों मानव के
> जीव प्रेम के बिना किंतु ये
> दूषण हैं दानव के।

ऐसे प्रेम का मनुष्य तो स्वयं ईश्वरवत् बन जाता है और इस प्रकार के आदर्श मानव के द्वारा यह धरातल भी स्वर्ग में परिणत होकर अक्षय सुख एवं शांति का आगार बन जाता है। पंतजी ने कहा भी है—

> मनुज प्रेम से जहाँ रह सकें—मानव ईश्वर !
> और कौन सा स्वर्ग चाहिए तुझे धरा पर ?

इस प्रकार हमारे आधुनिक कवियों ने भी प्रेम की व्यापक महत्ता का चित्रण अपनी कृतियों में किया है और प्रणय, निर्विवाद रूप से, उनकी उक्तियों का प्रमुख विषय रहा है।

कवि माथुर की प्रमानुभूति—

वस्तुतः छायावादोत्तर काव्य में भी प्रणय-चित्रण को महत्व दिया जाता रहा और प्रगतिवाद दोनों में ही प्रेम-प्रसंगों की अवतारण अवश्य हुई है। यहाँ यह भी स्मरणीय है कि प्रयोगवादी काव्य या नयी कविता में कहीं कहीं अति यथार्थवादी शृंगारिक चित्रों की बहुलता दीख पड़ती है और प्रयोगवाद के प्रवर्तक कवि अज्ञेय ने तो पुरुष और नारी के पारस्परिक संघर्ष की कल्पना में ही प्रणय का उदात्त रूप देखा है—

तोड़ दूँगा मैं तुम्हारा आज यह अभिमान
तुम हँसो कह दो कि अब उत्सर्ग वर्जित है
छोड़ दूं कैसे भला मैं जो अभीप्सित है
कोषवत् सिमटी रहे यह चाहती नारी
खोल लेने लूटने का पुरुष अधिकारी

यह दृष्टिकोण रखने वाले कवि का ध्यान आकुल परिरंभण की गाढ़ी तन्मयता के मध्य कहीं और चला जाता है तथा डॉ॰ धर्मवीर भारती के शब्दों में वह यही कहता है 'होठ पर होठ जब भी जायगा आँसुओं का वही खारा स्वाद फिर-फिर आयेगा।' इस प्रकार प्रयोगवादी काव्यधारा में बहुधा कामजन्य कुंठाओं की अधिकता का चित्रण हुआ है और कवियों की प्रणय-भावना में स्थूलता एवम् मांसलता का आधिक्य ही दीख पड़ता है तथा प्रयोगवाद के प्रारंभिक कवियों से लेकर अधुनातन नये कवियों की उक्तियाँ भी हमारे इस कथन का समर्थन करती हैं। उदाहरणार्थ शान्ता सिन्हा की निम्नलिखित पंक्तियाँ दर्शनीय हैं—

बाण-विद्ध हरिणी सी बाँहों में लिपट जाने की
उलझने की, सिमटने की
चली आई बेला सुहागिन पायल पहने

उक्त विवेचन से प्रयोगवादी कवियों का प्रेमविषयक दृष्टिकोण स्पष्ट हो जाता है और हम देखते हैं कि प्रयोगवाद के प्रारंभिक कवि श्री गिरिजा-कुमार माथुर को समीक्षक, रंग, रस एवं रोमांस का ही कवि कहते हैं तथा प्रभाकर माचवे के कथनानुसार 'तार सप्तक' में छपी गिरिजाकुमार माथुर की कुछ कविताएँ अपने में सुहागरात का सा सौरभ (एरोमा) सिमटाये रजनीगंधा सी मदिर और बायरनिक हैं। उनमें मध्यवर्गीय सुखैषणा और कीट्स की सी इन्द्रियगोचर सौंदर्यप्रियता है जो वायवी नहीं, मांसल और भौतिक है।' इसी प्रकार डॉ॰ रामस्वरूप चतुर्वेदी ने श्री गिरजाकुमार माथुर की प्रणय भावना का परिचय देते हुए कहा है 'टूटी चूड़ी का टुकड़ा तथा केसर रंग रँगे हुए बन उनकी आसक्ति के प्रधान केन्द्र हैं। उनकी कविताएँ सामान्यतः आकर्षक होती हुई भी सर्वत्र गहरे भावबोध से उद्भूत नहीं जान पड़ती। माथुर के कृतित्व में भावों का गद्‌रपन विशेषरूप से आस्वाद्य है। और यह भावात्मक गद्‌रपन प्रकृति चित्रों से अधिक यौन आकर्षण पर आधारित है। पर इन वैयक्तिक चित्रों को उन्होंने कहीं इस प्रकार प्रस्तुत नहीं किया कि वे 'वलगर' लगने लगें। गद्‌रपन के प्रभाव को बढ़ाने के लिए उन्होंने लोक संस्कृति के बहुत से उपकरणों का प्रतीकों, उपमानों अथवा अभिप्रायों की भाँति प्रयोग किया है।' इस प्रकार समीक्षक कवि माथुर की भाव-धारा में प्रणय भावना की प्रधानता प्रतिपादित करते हैं और समीक्षकों का एक वर्ग यदि उनकी प्रेमानुभूति को कुंठाजन्य मानता है तो दूसरा वर्ग कवि माथुर के प्रणय चित्रों को अश्लील नहीं समझता। अतएव हम यहाँ कवि माथुर प्रणयभावना का विस्तृत विश्लेषण आवश्यक समझते हैं।

वस्तुतः कवि माथुर ने अपनी काव्य साधना का प्रारम्भ ब्रजभाषा में रचित समस्यापूर्तियों के कवित्तों से ही किया पर शीघ्र ही वह खड़ीबोली की ओर भी आकृष्ट हुए और इन्टरमीडिएट में ही छायावादी काव्यधारा से परि-चित होने के कारण तथा बी०ए० में शेक्सपियर, मिल्टन, कीट्स एवं ब्राउनिंग आदि पाश्चात्य साहित्यकारों के अध्ययन से प्रभावित होने के फलस्वरूप माथुर जी ने प्रारम्भ में खड़ीबोली की जो कविताएँ लिखीं उन पर स्वच्छंदतावाद एवं छायावाद का प्रभाव अवश्य था। इस प्रकार उनकी प्रारम्भिक प्रणय

रचनाओं पर छायावाद का प्रभाव निर्विवाद रूप से है और उनकी इस निम्नलिखित कविता की तुलना महादेवी जी की 'विरह की घड़ियाँ हुई अलि मधुर मधु की यामिनी सी' नामक कविता से सहज ही की जा सकती है—

हृदय के स्वप्निल गगन में हँस चली तुम चाँदनी बन,
सजल स्मृतियाँ चौंक जातीं मूक उर में रागिनी बन।
तारकों से बिखरते हैं
अश्रु उस छाया मिलन में
वेदना की आह फैली आज सूनी यामिनी बन।
इन रुपहले बादलों में
फैलती मुस्कान हलकी।
बीत की झनकार जाती रश्मि की अनुगामिनी बन।
स्वप्न के इन बंधनों में
कौन बंधन हीन बँधता
अश्रु घन भी हँस पड़े जब तुम हँसी स्मित दामिनी बन।

पर कवि माथुर की काव्यसाधना में शीघ्र ही नवीन मोड़ उपस्थित हुआ और उन्हें किसी भी कवि का अनुकरणकर्ता कहलाना रुचिकर न जान पड़ा। अतएव उन्होंने अधिकांश प्रारम्भिक कविताएँ नष्ट कर दीं और यह दृढ़ निश्चय किया कि जब तक वह अपनी मौलिक राह नहीं खोज लेंगे, कोई कविता नहीं लिखेंगे। सन् १९३७ के लगभग उन्होंने 'बिखरी स्मृतियाँ' नामक चार सौ पंक्तियों की एक लम्बी प्रेमकथा लिखी और इसी वर्ष उनकी कृतियों में छायावादी भावबोध एवं शैली शिल्प से विच्छेद का स्पष्ट रूप से संकेत मिलने लगा। लगभग एक वर्ष के उपरांत सन् १९३८ की जुलाई में माथुर जी लखनऊ विश्वविद्यालय के अँग्रेजी विभाग में एक एम० ए० के विद्यार्थी होकर आये और उसी वर्ष ग्रीष्मावकाश में उन्होने निम्नलिखित उल्लेखनीय गीत की रचना की—

बड़ा काजल आँजा है आज
भरी आँखों में हलकी लाज

तुम्हारे ही महलों में प्राण
जला क्या दीपक सारी रात

निशा का-सा पलकों पर चिह्न
जागती नींद नयन में प्रात

सखी ऐसा लगता है आज
रोज से जल्दी हुआ प्रभात

छिप न पाया पूनो का चाँद
अभी तो झूम रही है रात।

कवि माथुर के प्रारम्भिक चरण के इस प्रसिद्ध गीत से यह स्पष्ट हो जाता है कि उनका युवा हृदय एक नवीन स्वर से पूर्ण है। इस प्रकार कवि अब बड़ी-बड़ी काजल से युक्त आँखों की ओर आकृष्ट हो रहा है और रातें किसी अनजान अपरिचित की स्मृति में बीत जाती हैं लेकिन अब तक प्रेम की अभिव्यक्ति में वह तीव्रता नहीं आ सकी जो भुक्त भोगी की हृदय की कराह में व्यक्त होती है। एक वर्ष पश्चात सन् १९३९ में कवि माथुर ने विरह के मधु गीत भी लिखे और इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रेम के संयोग एवं वियोग दोनों ही पक्षों को उन्होंने प्रारम्भ से ही सफलतापूर्वक अंकित किया है। इतना अवश्य है कि उनकी उक्तियों में संयोग का वर्णन जहाँ कहीं मिलता है वह प्रायः स्मृति रूप में ही है।

सन् १९४१ में कवि माथुर का प्रथम काव्य संग्रह 'मंजीर' प्रकाशित हुआ इसमें प्रणय भाव की अभिव्यक्ति ही विशेष रूप से हुई है। डा० कैलाश वाजपेयी के शब्दों में 'मंजीर' की रचनाएँ किशोर मन के स्वप्न चित्र हैं। दरअसल दुनिया वैसी नहीं है जैसी दिखाई देती है। बच्चे की दुनिया अबोध है। कार्य और कारण के बीच सम्बन्ध स्थापित करने में नितान्त असमर्थ— एक कोरी धुली दुनिया। किशोर की दुनिया आदर्शों की नींव पर खड़ी है, जिसकी दीवारों पर सतरंगे स्वप्नों का अक्स पड़ता है। एक विचित्र सा जादू भरा संगीत उभरता है और किशोर मन पर उदासी की हल्की-सी परत छोड़ कर सो जाता है, यहाँ प्यार के अभाव का पहली बार अहसास होता है। यहाँ

दुनिया एक दूसरी दुनिया है।' इस प्रकार मंजीर में कवि माथुर ने प्रणय के अनेक सुमधुर मर्मस्पर्शी चित्र अंकित किये हैं पर हम डा० शिवकुमार मिश्र के इस कथन से असहमत हैं कि 'इन कविताओं में कवि के छायावादी और निराशा, विषाद और असफलताओं की लौकिक व स्थूल अभिव्यक्ति करने वाले उत्तर छायावादी संस्कारों को देखा जा सकता है। प्रेम और सौन्दर्य प्रधान विषय है—रुग्ण रोमान और क्षय की छाप उन पर गहराई से अंकित है।

'मंजीर' के प्रकाशित होने के लगभग पाँच वर्ष पश्चात सन् १९४६ में कवि माथुर का दूसरा कविता संग्रह 'नाश और निर्माण' प्रकाशित हुआ। यद्यपि इस काव्यकृति में सामाजिकता के उपकरण भी मिलते हैं और कवि ने व्यक्ति के दुःखों उसकी निराशा, ऊब एवं असफलता आदि का चित्रण कर जन-मन से समन्वित हो एक नयी समाज रचना की आकांक्षा की है पर इस काव्य संग्रह में प्रणय भावनाओं से ओत-प्रोत कविताएँ भी हैं। साथ ही कवि ने इस काव्य कृति में संयोग श्रृंगार के मधुर चित्र भी अंकित किए हैं; जैसे—

प्रथम मिलन के उस ठंडे कमरे में
छत के वातायन से,
नींद मंदी-सी एक किरन भी,
थककर लौट-लौट जाती थी।
आलस भरे अँधेरे में
दो काली आँखों सी चमकीली,
एक रेडियम घड़ी सुप्त कोने में चलती
सूनेपन के हल्के स्वर सी।
उन्हीं रेडियम के अंकों की लघु छाया पर
दो छाँहों का वह चुपचाप मिलन था
उसी रेडियम की हल्की छाया में,
चुपके का वह रुका हुआ चुम्बन अंकित था—
कमरे की सारी छाँहों के हल्के स्वर सा
पड़ती थी जो एक-दूसरे में मिल गुँथकर

सूनी सी उस आधी रात—

इस 'नाश और निर्माण' में ही कवि माथुर की प्रसिद्ध कविता चूड़ी का टुकड़ा भी संकलित और इसमें कोई संदेह नहीं कि चूड़ी का टुकड़ा कविता में कवि की प्रणयानुभूति की अभिव्यक्ति अत्यंत प्रभावात्मक ढंग से हुई है। डा० नगेन्द्र के शब्दों में 'इस कविता का विश्लेषण करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि उसकी प्रेरक अनुभूति अतीन्द्रिय या वायवी न होकर मांसल है। उसकी सृष्टि कल्पना के द्वारा नहीं की गई है, अर्थात उसमें अनुभूति की कल्पना नहीं है, वरन मधुर अनुभूति के एक लघुक्षण के ऊपर बड़ी बारीकी के साथ कल्पना की रंजित तस्वीरें अंकित की गई हैं। जिस तरह कोई शिल्पी काँच के छोटे टुकड़े पर या रत्न पर पूरा चित्र अंकित कर देता है इसी तरह।' वस्तुतः इस कविता में कवि ने यही संकेत करना चाहा है कि व्यक्ति जीवन की जटिलताओं में चाहे कितना ही क्यों न उलझ जाय पर वह विगत स्मृतियों को जीवन में पुनः अवश्य लौटाना चाहता है और उन मधुर स्मृतियों को वह भूल नहीं पाता। इस प्रकार 'चूड़ी का टुकड़ा' कविता में भी अतीत की मधुर स्मृतियों का अंकन करते समय ही संयोग के सुखद दृश्य चित्रित किये गये हैं लेकिन उक्त चित्रण में पूर्णता अवश्य है। उदाहरणार्थ, यह कविता उद्धृत

आज अचानक सूनी-सी संध्या में
जब मैं यों ही मैले कपड़े देख रहा था
किसी काम में जी बहलाने,
एक सिल्क के कुर्ते की सिलवट में लिपटा,
गिरा रेशमी चूड़ी का
छोटा सा टुकड़ा
उन गोरी कलाइयों में जो तुम पहिने थीं,
रंग भरी उस मिलन रात में।
मैं वैसा का वैसा ही
रह गया सोचता

पिछली बातें।

दूज कोर से उस टुकड़े पर

तिरने लगीं तुम्हारी सब लज्जित तस्वीरें,

सेज सुनहली,

कसे हुए बंधन में चूड़ी का झर जाना,

निकल गई सपने जैसी वे मीठी रातें,

याद दिलाने रहा

यही छोटा-सा टुकड़ा।

यद्यपि कुछ विचारक इस कविता के उत्तरार्द्ध में स्थूलता की कुछ अधिकता भी देखते हैं और उनका मत है कि अंतिम पंक्तियों में अश्लीलता का स्पर्श भी हो गया है लेकिन हम इस मत से सहमत नहीं हैं। हमारा तो यही कहना है कि इस कविता में युवा हृदय की अत्यंत ही मर्मस्पर्शी अभिव्यक्ति हुई हैं और कवि ने यह स्पष्ट करना चाहा है कि चूड़ी का एक टुकड़ा भी अपने में अतीत की मधुरता को सम्पूर्णता से समाहित किये रहता है।

'नाश और निर्माण' के लगभग नौ वर्ष पश्चात कवि माथुर का तीसरा कविता संग्रह 'धूप के धान' सन् १९५५ में प्रकाशित हुआ और यह माथुर जी का सुप्रसिद्ध काव्य संग्रह है पर इसमें प्रणय और रोमांस की पृष्ठ-भूमि पर लिखी गयी कविताएँ बहुत कम हैं लेकिन संख्या में कम होते हुए भी वे अपना निजी महत्व अवश्य रखती हैं। साथ ही इस काव्य संग्रह की कुछ कविताओं में प्रकृति भी संयोग शृंगार की अभिव्यंजना में सहायक जान पड़ती है और कवि अब इस प्रकार की उक्तियाँ भी प्रकट करता है—

नयन लालिम स्नेह दीपित

भुज मिलन तन गंध सुरभित

उस नुकीले वक्ष की

वह छुवन, उकसन, चुभन अलसित

इस अगरु सुधि से सलोनी हो गई है

रात यह हेमंत की

कामिनी सी अब लिपट कर सो गई है
रात यह हेमंत की

कवि माथुर के अवशिष्ट दोनों कविता संग्रहों—शिला पंख चमकीले (सन् १९६१) और जो बँध नहीं सका (सन् १९६८)—में भी प्रणय सम्बन्धी कविताएँ संख्या में न्यून ही हैं पर महत्व संख्या का नहीं ; गुण का होता है और इसमें कोई संदेह नहीं कि इन काव्य कृतियों में जो प्रणय सम्बन्धी कविताएँ हैं वे भावुकता एवं नूतन शिल्प के कारण निर्विवाद रूप से सराहनीय हैं। उदाहरणार्थ—

लहरदार कटि
बाँके उभरे नितम्
खुली काँपती-सी
हथेली नरम
सुबह
बुँदकियोंदार मेंहदी लगा
पाँव में
झाँझ का आलता
हरी धूप की किरन-सी
लता

इस प्रकार हम देखते हैं कि कवि माथुर की काव्य कृतियों में प्रेम के संयोग पक्ष का चित्रण सीमित मात्रा में ही हुआ है और बहुधा स्मृति रूप में ही संयोग पक्ष की अभिव्यक्ति हुई है लेकिन इन अल्प उदाहरणों से ही यह सिद्ध हो जाता है कि कवि प्रेम के संयोग पक्ष का कुशल चितेरा है। डा० नगेन्द्र ने गिरिजाकुमार जी की 'सरस शृंगारी' रचनाओं के सम्बन्ध में यही लिखा है 'इन कविताओं की आधारभूत अनुभूतियाँ अत्यंत सूक्ष्म और परिष्कृत होते हुए भी मूर्त और मांसल हैं। उनमें एक ओर छायावाद की अतीन्द्रिय शृंगार भावना का अभाव है और दूसरी ओर प्रगतिवाद की अनगढ़ स्थूलता भी नहीं है। रूप और रस के मांसल स्पर्श परिष्कृत कल्पना के संसर्ग से अत्यंत रमणीय

बन गये हैं। यह श्रृंगार न तो भूखे तन और भूखे मन का आहार है और न किसी अदृश्य आलम्बन के साथ कल्पना विहार है—कवि ने जीवन की मधुर भावना को बड़े ही हल्के हाथों से किन्तु पूरी गहराई के साथ, बिंबित करने का सफल प्रयत्न किया है।'

कवि माथुर की विरह भावना

कवि माथुर की प्रणयानुभूति के सम्बन्ध में विचार करते समय हमारा ध्यान इस ओर भी आकृष्ट होता है कि उन्होंने संयोग की अपेक्षा वियोग को प्रमुखता प्रदान की है और उनकी काव्य कृतियों में अंकित प्रणय चित्रों में लौकिक विरहानुभूति का ही विशेष रूप से चित्रण हुआ है। यहाँ यह स्मरणीय है कि प्रयोगवादी काव्यधारा के प्रवर्तक अज्ञेय का कहना है कि वियोग एवं दुःख तो प्रेमानुभूति के अनिवार्य अंग हैं और उनके तत्व को वही जानता है जो उसमें आहुति बन जाता है—

वे रोगी होंगे प्रेम जिन्हें अनुभव रस का कटु प्याला है,
वे मुर्दे होंगे प्रेम जिन्हें सम्मोहनकारी हाला है।
मैंने विदग्ध हो जान लिया, अन्तिम रहस्य पहचान लिया,
मैंने आहुति बनकर देखा यह प्रेम यज्ञ की ज्वाला है।

इस प्रकार प्रयोगवादी काव्य में भी विरह के अनेक मर्मस्पर्शी चित्र अंकित हुए हैं और प्रयोगवाद के प्रारम्भिक कवि तथा नयी कविता के निर्माता श्री गिरिजाकुमार माथुर ने तो अपनी काव्यसाधना के प्रारम्भिक चरण में ही संयोग श्रृंगार के सुखद चित्रों की अपेक्षा वियोग श्रृंगार की हृदय-स्पर्शी उद्भावना ही प्रचुर मात्रा में की। यद्यपि कुछ विचारक माथुरजी को प्रेम और विरह का कवि न मानकर जन की व्यथा का कवि मानते हैं पर विचारपूर्वक देखा जाय तो कवि माथुर की काव्यकृतियों में लौकिक विरह के भी कई अनुपम चित्र विद्यमान हैं। उदाहरणार्थ; यहाँ सन् १६३६ में रचित उनके एक विरह गीत की कुछ पंक्तियाँ उद्धृत की जा रही हैं—

प्यार बड़ा निष्ठुर था मेरा।
कोटि दीप जलते थे मन में

कितने मरु तपते यौवन में।
रस बरसाने वाले आकर—
विष ही छोड़ गये जीवन में।
जल की जगह ज्वाल ही बरसी,
सदा प्यार के लघु सावन में।
इस घर के कोने कोने में धीरे मौत बिछाती डेरा।
ज्वर-सा थका हुआ यह वन है,
रुकती गिरती दबी पवन है।
रुंधी हुई छाती सा गहरा,
सुप्त निशा का सूनापन है।
गरम मोम-सा घुलता जीवन,
मरते ओले जैसा मन है।
ढली रात के-से दीपक पर काजल बन छा रहा अँधेरा।
..........इत्यादि

वस्तुतः कवि माथुर के प्रथम काव्य संग्रह 'मंजीर' में विरह भावना का ही आधिक्य दृष्टिगोचर होता है और इस काव्यकृति की अधिकांश कविताएँ प्रायः युवा हृदय की विरह जन्य वेदना से ही ओत प्रोत हैं। अतएव वियोगी कवि अब इस विरह दशा में अनेक प्रकार प्रकार की अनुभूतियाँ करता है—

मिटी दूर की आशा भी अब
आह, कहूँ किससे मैं मन की।
आँखों के नीले उपवन में
आँसू सागर के लघु तट पर।
आ जातीं तुम प्राण सदा ही
चल मेरे सपनों के पथ पर
रानी, तुम बनकर आई थीं
प्रथम दूज मेरे जीवन की।

\+ + +

अब सूनी पलकों पर उतरा
वही तुम्हारा सस्मित आनन।
वे काली सलज्ज सी आँखें,
भटकी, भोली-सी, नत चितवन।
होने पर भी बन्द वही—
रक्ताभ अधर कुछ मुस्काते से।
आज भूल जाऊँ मैं कैसे—
ग्राम बालिका सा अल्हड़पन।

इस प्रकार जब वियोग की पीड़ा अत्यन्त सघन हो उठती है तब विरही अपने मन को समझाना चाहता है और सोचता है—

····बार बार फिर कब है मिलना
जिस सपने को सच समझा था,
वह सच आज हो रहा सपना,
याद भुलानी होगी सारी
भूले भटके याद न आनी।

यद्यपि कवि माथुर की विरह भावना में स्वाभाविक ही है और कवि ने कहीं भी अत्युक्ति का सहारा लेकर वियोग के अतिरंजित चित्र अंकित नहीं किये हैं पर डा० शिवकुमार मिश्र ने माथुर जी पर यह आरोप लगाया है कि 'रुग्ण रोमान और क्षय की छाप उन पर गहराई से अंकित है।' वास्तव में यह आक्षेप किसी भी दृष्टि से उचित नहीं कहा जा सकता क्योंकि कवि माथुर की प्रणयानुभूति में त्याग एवं बलिदान की भावनाओं का पर्याप्त समावेश हुआ है और इस तथ्य की पुष्टि के लिए हम यहाँ 'मंजीर' में संकलित कवि माथुर की 'बिदा समय' नामक कविता की कुछ पंक्तियाँ उद्धृत कर रहे हैं—

बिदा समय क्यों भरे नयन हैं।
अब न उदास करो मुख अपना

\+ + +

जाने कितना अभी और
सपना बन जाने को है जीवन
जाने कितनी न्योछावर को
कहना होगा अभी धूल कन
अभी और देनी है कितनी,
अपनी निधियाँ और किसी को।

वस्तुतः कवि माथुर की प्रणय भावना की यह एक उल्लेखनीय विशेषता है कि उसमें कवि के 'बलिदान का ही भाव' विशेष रूप से है और उसके कारण विरहजन्य निराशा में भी कर्मठता का एक अद्‌भुत संकल्प छिपा रहता है। इसीलिए कवि विरहाधिक्य के कारण कभी भी निष्क्रिय नहीं होता और वह चाहे क्षण भर के लिए दुखी होता हो लेकिन उसे तुरन्त अपना कर्तव्य स्मरण हो आता है तथा वह अतीत पर रुदन करने की अपेक्षा अतीत की मधुर स्मृतियों से बल ग्रहण करता है। इस प्रकार माथुर जी के द्वितीय काव्य संग्रह 'नाश और निर्माण' में निराशा एवं विषाद अधिक गहराई से कवि के जीवन में उतर गये प्रतीत होते हैं तथा कवि जब सांसारिक कटु-ताओं का अनुभव करता है तब वह गा उठता है—

बीत गया संगीत प्यार का,
रूठ गई कविता भी मन की।

\+ + ×

इस उदास वन के ऊपर
पतझर की छाया गहरी है,
अब सपनों में शेष रह गई
सुधियाँ उस चन्दन के वन की।

कवि माथुर की विरह भावना में एक उल्लेखनीय विशेषता यह भी है कि हम विरही को जीवन से असम्पृक्त एकाकी ही आँसू बहाते नहीं देखते बल्कि उसे चुपचाप व्यथा का भार ढोते हुए भी जीवन संघर्षों से जूझते हुए पाते हैं। यहाँ यह ध्यान में रखना होगा कि माथुर जी प्रेम और विरह की लम्बी-लम्बी उच्छ्‌वासों तथा मधुर कल्पनाओं के पीछे केवल एक सत्य मानते

हैं और वह है 'शरीर की भूख' तथा उनका मत है कि दैनिक जीवन की भट्ठी में काल्पनिक आदर्शों के 'खोटे सिक्के' गल जाते हैं। इस प्रकार कवि माथुर के तृतीय कविता संग्रह 'धूप के धान' में संकलित 'प्रौढ़ रोमांस' नामक कविता में एक स्थल पर कहा गया है—

पर मुझको है पता
कि बिछुड़न की इन तीखी पीड़ाओं में
ऊँचे ऊँचे आदर्शों की इन बातों में
छिपा हुआ है भेद कौन सा
तुम इस जीवन का निचोड़ जिसको कहते हो
वह सारा वेदान्त फलसफा
काव्य कला की मधुर कल्पना
केवल शारीरिक है
आज नहीं मानोगे तुम मेरी बातों को
नीरस सीख कहोगे जिनको
पर अपनी खिल्ली कल तुम्हीं उड़ाओगे
जब दैनिक जीवन की भट्ठी में
गल जायेंगे खोटे सिक्के सारे मन के
तब जानोगे इन आदर्शों की सच्चाई

वस्तुतः कवि के कहने का अभिप्राय यह नहीं है कि वियोग-व्यथा होती ही नहीं या प्रिय का अभाव कभी खटकता ही नहीं बल्कि वह तो यही मानता है कि संघर्षमय जीवन में इस रोने-धोने से कोई लाभ नहीं क्योंकि वह व्यक्तित्व को अकर्मण्य बनाकर खोखला कर देता है। अतएव कवि माथुर के अनुसार सच्चा वियोगी वही है जो प्रिय की सुधि को मन में रखकर संघर्षों से जूझता है। इस प्रकार उन्होंने 'प्रौढ़ रोमांस' कविता में गार्हस्थिक विरह का वर्णन भी किया है और वह पत्नी की विरह वेदना को केवल ध्वनि रूप में प्रस्तुत करते हुए कहते हैं—

और याद आता संध्या की बेला में
वह एकान्त मकान

और उजली बाहों सी यह दीवारें
नहीं समेट पा रही मुझको
और न दिन भर की थकान को मिटा रही हैं।

सत्य तो यह है कि 'सुधि की पीड़ा' का यह रूप विरह-भावना के क्षेत्र में कवि माथुर की सर्वथा मौलिक उद्भावना ही है और हम देखते हैं कि इसके पहले विरह भावना जीवन की बहुमुखी अभिव्यंजना से दूर थी लेकिन वह अब उसके अत्यन्त समीप आ गई है तथा पत्नी के वियोग के साथ बच्चों के अभाव की अनुभूति विरह व्यथा को यथार्थ रूप प्रदान कर रही है। इतना होते हुए भी इस विरह व्यथा में उदासी नहीं है क्योंकि वह कर्म के सौन्दर्य से संयुक्त हैं और कवि यही कहता है—

क्योंकि बड़ी भोली मिठास की सुधियाँ हैं ये
जीवन के मासूम सुखों की
तन के मन के स्वस्थ चैन की
जिनकी उजली उजली छापें
खिची हुई हैं स्वस्तिक सी कोने-कोने में।

इससे स्पष्ट हो जाता है कि माथुर जी की विरह भावना में पर्याप्त नवीनता है और उन्होंने गार्हस्थिक विरह की नवीन उद्भावना के अतिरिक्त 'प्रवास' के भी सुन्दर मधुर चित्र अंकित किए हैं। इस प्रकार 'धूप के धान' में संग्रहीत 'न्यूयार्क की एक शाम' नामक कविता में विरही नायक को सुदूर देश में अपना घर-बार स्मरण हो आता है—

दुनिया एक मिट गई, टूटे
नया खिलौना ज्यों मिट्टी का
आंसू की-सी बूंद बन गया
मोती का संसार, सलोनी

× × ×

सभी पराया सभी अचीन्हा
रंग हजारों पर मन सूना

नभ भवनों में याद आ रहे
वे कच्चे घर-द्वार सलोनी

कवि माथुर ने कहीं-कहीं ऋतुओं के उद्दीपक प्रभाव का भी मर्म-स्पर्शी अंकन किया है और 'सावन की रात' कविता में वापस के सौन्दर्य में कोई नायक अपनी प्रियतमा का रूप इस प्रकार देखता है—

घन घुमड़न भुज बन्धन के उन्माद सी
बढ़ती आती रात तुम्हारी याद सी
रात रसीली बूँदों वाली
जैसे देह रसाल
यहाँ महक उठती मेंहदी की
वहाँ हाथ हैं लाल
विद्युत दीपक कंगन की चमकार सी
अधर छुवन की सिहरन मंद फुहार सी
घन मतवाले काजल काले
जैसे लम्बे बाल

उक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि कवि माथुर की विरहानुभूति में नवीन उद्भावनाओं के साथ-साथ स्वाभाविकता, सरसता और मर्मस्पर्शिता भी है। डा० मधुरमालती सिंह के शब्दों में 'संक्षेप में कहा जा सकता है कि गिरिजाकुमार माथुर के काव्य में प्राप्त विरह भावना के विरल चित्र भी अपनी अनुभूति में अनुपम हैं। उनमें परम्परित विरह व्यथा जितनी मार्मिक है उतनी ही उसकी नवीन उद्भावना भी। गार्हस्थिक विरह की नवीन उद्-भावना जीवन के अधिक समीप होने से अत्यंत हृदय स्पर्शी हो गयी है।

कवि माथुर का प्रकृति-चित्रण

प्रवेश

प्रस्तुत: 'प्रकृति सौन्दर्य के प्रति उपेक्षा प्रकट करना सृष्टि निर्माता ईश्वर के प्रति ही उपेक्षा दिखाना है क्योंकि प्राकृतिक सौन्दर्य दर्शन से स्वाभाविक ही मन आनन्द विह्वल हो उठता है। वस्तुत: प्रकृति तो मानव की आदिम सहचरी ही है तथा आदिकाल के प्रथम पुरुष ने जब अपने चक्षुपटल खोले होंगे तब उसको सर्वप्रथम प्रकृति की अनूठी छवि ही दृष्टिगोचर हुई होगी और इस प्रकार मानव का प्रकृति के साथ स्वाभाविक ही चिर साहचर्य स्थापित हो गया होगा। चूंकि प्रारम्भ से ही मानव में साहचर्य से उद्भूत वासना अथवा संस्कार रूप में प्रकृति के प्रति आकर्षण की भावना रही है अतएव प्राचीन से लेकर अर्वाचीन कवियों तक ने प्रकृति के सुन्दर विराट् और भयंकर रूपों का विशद वर्णन किया है। इस प्रकार काव्य में प्राकृतिक दृश्यों के चित्रण की परम्परा प्राचीन काल से चली आ रही है और अधुनातन कवियों तक ने उसे हर्ष के साथ अपनाया है।'

जैसा कि डा० विजयेन्द्र स्नातक का कहना है 'हिन्दी साहित्य के अन्तर्गत प्रकृति का जिस रूप में ग्रहण हुआ, वह न तो मौलिक है और न उद्भावना की दृष्टि से ही नवीन कहा जा सकता है। आदि काल के साहित्य में प्रकृति को उपयुक्त स्थान नहीं मिला। भक्ति युग में सूर और तुलसी ने

प्रकृति का उपयोग आलम्बन और उद्दीपन दोनों दृष्टियों से किया। कबीर और जायसी ने रहस्य भावना के वर्णन में प्रकृति के प्रतीक ग्रहण किये और अप्रस्तुत विधान की योजना करके प्रकृति को पर्याप्त स्थान दिया। रीति-कालीन कवियों ने शास्त्र मर्यादा तथा नायिका भेद के भँवर जल में फँसकर प्रकृति की क्षमता को सीमित बना दिया और प्रकृति के सौन्दर्य से आँख हटाकर उसे अपने मनोविकारों की पृष्ठभूमि में ला खड़ा किया। फलतः प्रकृति की स्वतन्त्र सत्ता विलीन हो गई और उसका अनवद्य सौन्दर्य उनकी दृष्टि में नायक या नायिका के मन को रिझाने या रिसाने वाला बन गया। उद्दीपन की यह प्रणाली यद्यपि नूतन न थी तथापि अपने प्रयोग की क्षुद्र सीमा परिधि में बँधकर यह कवि और काव्य दोनों को कुंठित करने वाली सिद्ध हुई। केशवदास, चिंतामणि, देव, पद्माकर और भारतेन्दु तक यही प्रणाली चलती रही। संतोष का विषय है द्विवेदी युग में प्रकृति ने फिर से उन्मुक्त वातावरण में साँसें लीं और तथाकथित शास्त्रीय बंधन से छूटकर वह कवि के मानस में हर्षोल्लास की तरंग उत्पन्न करने की क्षमता जुटा सकी। छायावादी युग में आकर तो प्रकृति अप्सरा को अपने पंखों में पूरी उड़ान भरने को नील गगन दिखाई दिया और पंत, प्रसाद, निराला के काव्य कानन में प्रकृति नटी को स्वच्छंद विचरण करने का अवसर मिला। शास्त्र की शृंखला से छूटने पर प्रकृति में रूपातिशय के साथ वस्तु और भाव दोनों का सम्मिश्रण इन कवियों द्वारा हुआ और प्रकृति को सापेक्ष दृष्टि से न देखकर स्वतन्त्र और निरपेक्ष दृष्टि से देखना ही श्रेयस्कर समझा जाने लगा। प्रकृति के प्रति दृष्टि कोण का यह स्वस्थ परिवर्तन हिन्दी कविता में व्यापकता लाने का कारण बना।'

कवि माथुर का प्रकृति-प्रेम

यद्यपि छायावादी कवियों ने हिन्दी कविता में नूतन सौन्दर्य बोध का समावेश किया था पर छायावाद की सौन्दर्य सम्बन्धी धारणा में विस्तार न आ सका और इस संकीर्ण एवं रूढ़ सौन्दर्य बोध को छायावादोत्तर काल में कई झटके लगे तथा ये झटके प्रगतिवाद और प्रयोगवाद दोनों के द्वारा लगे। इस प्रकार छायावादोत्तर कविता में शनैः शनैः रूढ़ धारणा की पकड़ ढीली

पड़ने लगी और नवीन कवियों ने इसमें अकल्पित विस्तार किया। यहाँ यह स्मरणीय है कि छायावादी कवि रमणीयता, कोमलता, स्वप्नमयता और स्निग्धता का आकांक्षी था। साथ ही संचयन के सिद्धान्तों पर विश्वास करने के फलस्वरूप वह प्रकृति की जो भी वस्तुएँ रोचक प्रतीत होती थीं उन्हें साग्रह स्वीकार कर अवशिष्ट वस्तुओं को उपेक्षित रहने देता था। अतएव जीवन की बहुत सी महत्वपूर्ण वस्तुएँ छायावादी कवियों की दृष्टि में वंचित रह गयी थीं और नये कवियों को यह स्थिति स्वाभाविक ही सहन न हो सकी। इसलिए उन्होंने छायावादी सौन्दर्य बोध के प्रति विद्रोह कर उन वस्तुओं को भी सादर स्वीकृत किया जो कि अब तक हिन्दी कविता में अस्पृश्य समझी जाती थीं। इस प्रकार अब—

> निकटतर धँसती हुई छत, आड़ में निर्वेद
> मूत्रसिंचित मृत्तिका के वृत्त में
> तीन टाँगों पर खड़ा नतग्रीव
> धैर्य धन गदहा

भी काव्य जगत के लिए उतना ही आवश्यक प्रतीत हुआ जितना कि नीले नभ के शतदल पर

> वह बैठी शरद हासिनी
> मृदु करतल पर शशि मुख धर
> नीरव अनिमिष एकाकिनी

कहने का अभिप्राय यह है कि प्रयोगवादी काव्यधारा या नयी कविता में यथार्थवादी सौन्दर्य दृष्टि ही अपनायी गयी और श्री लक्ष्मीकांत वर्मा के शब्दों में 'नयी कविता का भावबोध जिस विवेक, यथार्थ और मानवीय स्तर को स्वीकार करता है, उससे एक नये प्रकार की दृष्टि विकसित होती है जो सौन्दर्यबोध को नये परिवेश और नये संदर्भ में देखने की प्रेरणा देती है। यह सौन्दर्य है यथार्थ से ओत-प्रोत, जीवन की व्यापकता, और यह परिवेश आज की मर्यादित वैज्ञानिकता जिसके सामने रहस्य, अंध विश्वास, निरपेक्ष सत्य, अखंड आत्म बोध इत्यादि केवल कुहासे की घनीभूत अल्पज्ञता ही प्रतीत होते हैं। यथार्थ और विवेक यह दोनों आधुनिकता और वैज्ञानिकता की सामर्थ्य में

विश्वास करते हैं ; साथ ही हमारी अभिरुचि को अधिक प्रौढ़ और सक्रिय रूप देने में सहायक होते हैं। प्रौढ़ इसलिए कि अभिरुचि में विवेक द्वारा सत्यान्वेषण की पुष्टि मिलती है, सक्रिय इसलिए कि सत्य की स्वीकृति कोई बाह्य आरोपित अखंड का बोध नहीं कराती वरन् वह जीवन की गति से विकसित होती है और जीवन की अनुभूति में परिपक्व होकर उसमें गति पैदा करती है। जीवन का साक्षात्कार, उसका आत्म सम्मान, नयी कविता के सौन्दर्य बोध का यथार्थ है इसलिए उसमें जीवन की सम्पूर्णता अपने राग, विराग, सामंजस्य, विघटन, प्रलय, सृजन, संघर्ष और अभिमान, इन सब तत्वों को समाहित करके आगे बढ़ती है। नयी कविता का सौन्दर्य बोध 'शिशुवत जिज्ञासा' नहीं है, वह वैज्ञानिक बोध है जिसमें सौंदर्य का शुभ पक्ष उसके अशुभ पक्ष से उतना ही सम्बन्धित है जितना कि काव्य बोध यथार्थ से सम्बन्धित है। यह बात भी मान लेनी होगी कि नयी कविता का भावबोध मानसिक स्तर पर यथार्थ की अनिवार्यता को जीवन का अविभाज्य अंश मानकर उसकी दुरूहता को वहन करने की चेष्टा करता है और तब यह सौन्दर्य बोध को जीवन से प्रथम किसी दैवी आभा या अखंड ज्योति का आभास नहीं मानता। वह कमल के साथ कीचड़ का अस्तित्व स्वीकार करता है, अभिभूत क्षणों के साथ विक्षिप्त क्षणों को भी महत्व देता है, वह सुन्दर को विरूप से पृथक नहीं मानता, दोनों का सम्बन्ध अनिवार्य मानता है क्योंकि 'रूप' उतना ही बड़ा सत्य है जितना विरूप, सुन्दर उतना ही बड़ा सत्य है जितना असुन्दर, जीवन उतना ही बड़ा सत्य है जितना जीवन-परिवेश। विरूपता अश्लीलता नहीं है, असुन्दर भोंडापन (Vulgarity) नहीं है, परिवेश खोखला नहीं है—इन सबका सौन्दर्य के पक्ष में महत्व है, ये सबका सौन्दर्य के पक्ष में महत्व है, ये सब सौन्दर्य को सम्पूर्ण बनाते हैं, इसके आयामों को विकसित करते हैं।'

इस प्रकार प्रयोगवादी काव्यधारा या नयी कविता में नूतन सौंदर्य-बोध के कारण प्रकृति चित्रण में भी नवीनता के दर्शन होते हैं और प्रयोग-वाद के एक प्रसिद्ध कवि श्री गिरिजाकुमार माथुर ने भी अपनी काव्य-कृतियों में नूतन प्राकृतिक दृश्यों की अवतारणा की है। यहाँ हम यह भी स्पष्ट कर

देना उचित समझते हैं कि प्रकृति की व्यापकता के अन्तर्गत मानव एवं प्राकृतिक सुषमा दोनों का ही समावेश होता है और माथुर जी को भी इन दोनों प्रकार के प्रकृति चित्रण में सफलता प्राप्त हुई है लेकिन समीक्षा ग्रंथों में प्रकृति चित्रण से अभिप्राय प्राकृतिक सुषमा से ही होने के कारण हम भी यहाँ कवि माथुर द्वारा अंकित प्राकृतिक सुषमा ही उदाहरण सहित परिचय देंगे। साथ ही यहाँ यह भी स्मरणीय है कि समीक्षक माथुर जी के जन्म-स्थान का परिचय देते हुए कहते हैं 'ढाक के जंगलों, ऊँचे-नीचे पठारों, ताड़ के वृक्षों, काली मिट्टी वाले खेतों, खजूरों के झुरमुट और गोलाईदार टीलों से घिरा पुराने ग्वालियर राज्य का पछार नामक कस्बा, जो अब अशोक नगर के नाम से मध्य प्रदेश का सम्पन्न व्यापारिक केन्द्र है, माथुर जी की जन्मभूमि है।' इसलिए कवि माथुर का प्रकृति के प्रति अनुराग स्वाभाविक ही कहा जायगा और अपने इस प्रकृति प्रेम के कारण ही उन्होंने अपनी सभी काव्य-कृतियों में प्रकृति के अनुपम चित्र अंकित किए हैं। इस सन्दर्भ में यह उल्लेखनीय है कि माथुर जी के सर्वप्रथम कविता संग्रह 'मंजीर' के तृतीय पृष्ठ पर ही जो 'माँ' शीर्षक कविता दी गयी है उसमें प्रकृति का सफल एवं आकर्षक चित्रण किया गया है; देखिए—

गोधूली में धूल भरी जब
वन से चरकर गायें आतीं।
दूर मन्दिरों में संझा की—
झांझ आरती भी बज जातीं।
दीप जलाकर तुम तुलसी पर,
गोदी में ले हमें सुलातीं।
नींद बुलाने को थपकी दे,
नींद भरी तुम लोरी गातीं··
थके हुए हम लोग कंधे से—
सोते आँचल ओट तुम्हारे।

वस्तुतः इन पंक्तियों में माथुर जी ने प्राकृतिक पीठिका का सुन्दर चित्रण किया है और 'मंजीर' में ही सांध्यकालीन वातावरण का सुन्दर वर्णन

'संध्या' नामक कविता की इन पंक्तियों में हमें दृष्टिगोचर होता है—

करुण संध्या की विदा।
साँस का अन्तिम सुमन की फैलती है मन्द होकर।
दूब पर गोधूलि बेला भी उतरती आज होकर।
श्याम झुरमुट में विरह की
तान झींगुर ने उठाई
गोद तारक चावलों से साँझ की भर दी निशा ने।
एक दो जो गिर रहे उनको समेटे उस दिशा ने।
छूटती सी बाँह वह
अन्तिम किरण-सी दी दिखाई
हो रही चलते मिलन में नयन की नत ज्योति फीकी।
पात फूलों से क्षितिज की देहली चुपचाप टीकी।
दूर के उस ग्राम में—
रथ से उड़ी कुछ धूल छाई।

सत्य तो यह है कि कवि माथुर ने अपनी कविताओं में विस्तृत प्राकृतिक वातावरण प्रस्तुत करने की ओर विशेष रुचि प्रकट की है और उनकी कुछ कविताओं में अत्यधिक प्रभावशाली एवं हृदयस्पर्शी वातावरण की योजना हुई है। उदाहरणार्थ, 'तार सप्तक' में संकलित 'रुककर जाती हुई रात' नामक कविता की कुछ पंक्तियाँ उद्धृत हैं—

रुककर जाती हुई रात का
अन्तिम छाहों भरा प्रहर है
श्वेत धुएँ के पतले नभ में
दूर झाँवरे पड़े हुए सोने से तारे
जगी हुई भारी पलकों से पहरा देते
नींद भरी मन्दी बयार चलती है
वर्षा-भीगा नगर
भोर के सपने देख रहा है अब भी

लम्बे लम्बे धुँधले राजपथों में
निशि भर जली रोशनी की
कुछ थकी उदासी मँडराती है।
पानी रँगे हुए बँगलों के वातायन से
थकी हुई रंगीनी में डूबा प्रकाश अब भी दिख जाता
रेशम, पर्दों, सेजों, निद्रा भरे बन्धनों की छाया-सा

इसमें कोई सन्देह नहीं कि कवि माथुर कुछ कविताओं में प्रकृति का स्वतन्त्र चित्रण करने में अप्रतिम सफलता भी प्राप्त हुई है, उन्होंने प्रकृति को उसी रूप में अंकित किया है जैसी उसकी अनुभूति उन्हें हुई है। इस दृष्टि से माथुर जी के द्वितीय काव्य संग्रह 'नाश और निर्माण' की एक कविता 'वसंत की रात' उल्लेखनीय है और यह कविता प्रारम्भ से अन्त तक वसन्त की रंगीनी एवं उसके प्रभाव से पूर्ण है। यहाँ यह स्मरणीय है कि वसन्त आनन्द का प्रतीक है अतः कवि को भी उसके आगमन से सर्वत्र हर्ष के उपकरण बिखरे प्रतीत होते हैं। यद्यपि यह कविता सम्पूर्णतः प्रकृति परक है पर कवि ने उसमें चार प्रकार के चित्र प्रस्तुत किए हैं और वह पहले तो 'वसन्त की रात' की इन प्रारम्भिक पंक्तियों में एक प्रकार का मदमाता वातावरण प्रस्तुत करता है—

आज हैं केसर रंग रँगे वन,
रंजित शाम भी फागुन की खिली पीली कली सी
केसर के वसनों में छिपा तन,
सोने की छाँह-सा
बोलती आँखों में
पहिले वसन्त के फूल का रंग है।

इसके पश्चात् कवि ने यह स्पष्ट करना चाहा है कि उक्त मादक वातावरण का मानव पर क्या प्रभाव पड़ता है—

गोरे कपोलों पै हौले से आ जाती,
पहिले ही पहिले के,
रंगीन चुंबन की सी ललाई।

अन्त में कवि ने उस हर्ष के प्रतीक वसन्त के प्रभाव की मानव जीवन से संगति भी स्थापित की है—

जीवन में फिर लौटी मिठास है
गीत की आखिरी मीठी लकीर सी
प्यार भी डूबेगा गोरी-सी बाँहों में
ओठों में, आँखों में
फूलों में डूबा ज्यों
फूल की रेशमी रेशमी छाँहें।

कवि माथुर के तृतीय काव्य संग्रह 'धूप के धान' में तो भोर एक लैंडस्केप, लैंडस्केप, शाम की धूप, दो चित्र, सावन के बादल, नई दिवाली, सायंकाल, बरफ का चिराग, आग और फूल, रात हेमन्त की, धूप और ऊन, न्यूयार्क की एक शाम, मैनहैटन, न्यूयार्क में फॉल, चाँदनी गरबा, सिंधु तट का यात्री, नये साल की साँझ, तीन ऋतु चित्र, पूरब की किरन, रात है, चन्दरिमा, ढाकवनी, सावन की रात, हेमन्त की पूनों और धरादीप आदि कविताएँ प्रकृति चित्रण सम्बन्धी ही हैं। इस प्रकार पैंतालीस कविताओं में पूरा काव्य संकलन में लगभग पचीस कविताएँ प्रकृति वर्णन सम्बन्धी हैं और इस दृष्टि से 'धूप के धान' में प्रकृति चित्रण सम्बन्धी कविताओं का ही अधिकता है। साथ ही इस काव्यकृति की कविताओं में अंकित प्रकृति सौंदर्य में नवीनता, सरसता एवं हृदयग्राहिता आदि गुणों का भी आधिक्य है और हमें कवि के व्यापक दृष्टिकोण का भी परिचय मिलता है क्योंकि अब कवि की दृष्टि से देश तक ही सीमित नहीं रही बल्कि वह सुदूर अमेरिका के एक प्रसिद्ध नगर न्यूयार्क की शाम और न्यूयार्क में फॉल आदि का भी वर्णन करता है। यहाँ 'न्यूयार्क में फॉल' की कुछ पंक्तियाँ उद्धृत है—

सात काले समुन्दर पार,
गोरे नाग की रानी,
सात काले समुन्दर पार
यह पाताल का पानी
हजारों मील दो जलखंड पर

ठंडे भँवर की कुंडली
भुजंगी फेन पर बैठी
धरा यह चंचला मरमेड सी
समुद्री रेत का सीमान्त
सिल्वर मिल्क सा फैला
खुला उभरा भरा तन
कसी नीची स्नान-सकैटी
सूर्य ऊपर खिला
जिसके बदन के रंग जैसी धूप का
रस ले रही लेती धरा,

प्रकृति चित्रण की दृष्टि से 'धूप के धान' की ढाक बनी' नामक कविता भी विशेष रूप से उल्लेखनीय है और इस कविता में कवि माथुर ने प्रकृति का अत्यंत सजीव चित्रण किया है। साथ ही 'धूप के धान' की एक अन्य कविता 'शाम की धूप' में कवि ने प्रकृति चित्रण के माध्यम से आधुनिक जीवन का ही चित्रण किया। इस प्रकार कवि ने तटस्थ भाव से प्रकृति चित्रों के खंड प्रस्तुत करते हुए यह स्पष्ट करना चाहा है कि 'शाम की धूप' का स्वागत किस प्रकार प्रकृति जगत में होता है और यह बात मानव जगत जगत में किस प्रकार ध्यान देने योग्य है। कविता के प्रारंभ में कवि कहता है—

चल पड़ी तेज हवा
बदल गया मौसम
आ गई धूप में कुछ गरमाई
बढ़ गया दिन का उजेला रास्ता

कालान्तर में कवि सांध्यकालीन प्रकृति सौन्दर्य का चित्रण करते हुए लिखता है—

पड़ गई मंद हवा
हो गई सुनहरी धूप

पेड़ के पास सूर्य जा पहुँचा
जिसके पत्तों का रंग लाल हुआ

इसके पश्चात कवि आधुनिक जीवन के कोलाहल को भी चित्रित करता है—

और सड़को पर लौटता है शोर
तीसरे पहर के सुनसान को तोड़
केकरीटो पै बूट धूल भरे
गूंजते अनमिली आवाज के साथ

+ × +

घंटियाँ बज रही हैं रिक्शों की
बीसियों साइकिलों की पाँतें
कैरियल, टोकरी या हैंडिल में
कुछ के खाली कटोरदान बँधे
कुछ में हैं फाइलें हर छिन भूखी
जो न कभी खत्म हुई दफ्तर में

कवि का ध्यान आधुनिक जीवन की अशांति की ओर भी गया है क्योंकि वह भी जीवन का अनिवार्य अंग है और कवि जीवन की कठिनाइयों का उल्लेख करते हुए लिखता है—

आज पग-पग पै क्लेश कठिनाई
घर से खलिहान तक है अन्न नहीं
कारखानों से लेके बस्ती तक
है न कपड़ा कहीं, पहिनने को
दूध घी का यहाँ पै चर्चा क्या
जब न चीनी, न गुड़, न दाल नमक
हो गया स्वप्न किरासिन का तेल

इस प्रकार प्रारंभ में जो प्रकृति केवल प्राकृतिक वस्तुओं को ही प्रभावित करती थी वह अब मानव को भी प्रभावित करने लगी और 'शाम की धूप' में कवि माथुर का ध्यान इस ओर भी गया है कि—

आज इन्सान हो गया है कैद
पर न मन हार मान सकता है
क्योंकि विश्राम की इस बेला में
यह थकी, अनमनी, सुनहरी धूप
दिन के संघर्ष से जो तप-तप कर
उजले सोने सी निखर आई है

इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रकृति के प्रति कवि माथुर का सर्वथा नवीन और व्यापक दृष्टिकोण रहा है तथा यही कारण है कि उनके प्रकृति चित्रण में हमें पर्याप्त नवीनता के दर्शन होते हैं। साथ ही 'धूप के धान' नामक काव्य संग्रह के सदृश्य उन्होंने अपने चतुर्थ काव्य संग्रह 'शिला पंख चमकीले' में भी प्रकृति के नूतन चित्र अंकित किये हैं और इस कृति में निम्न-लिखित कविताएँ प्रकृति सम्बन्धी हैं—सूरज का पहिया, दियाधरी, माटी और मेघ, रात फुटपाथ और गीत, प्रकाश की प्रतीक्षा, तूफान एक्सप्रेस की रात, चंद्र खंडों की आत्मा, कहीं कोई नहीं, वसंत: एक प्रगीत स्थिति, प्रयोग का प्रयोग, पुरुष-मेघ, दो दुनियाँ और खटमिट्ठी चाँदनी आदि। इस प्रकार 'शिला पंख चमकीले' में प्रकृति सम्बन्धी कविताएँ ही संख्या में अधिक हैं और उनमें नवीनता भी निस्संदेह है; उदाहरणार्थ—

आग, लपट, धूल, भस्म
तत्वों की उड़ती है
धातु, स्लेट, प्रस्तर का
नाग छत्र उठता है
अग्नि व्याल फन हजार खोल
लील रहा व्योम
कोसों की ज्वाल रज खमंडल भुजाओं में
एक नया ताजा सूर्य्य बनकर निकलता है

कवि माथुर के पाँचवें काव्य संग्रह 'जो बँध नहीं सका' में भी प्रकृति के प्रति कवि का सहज अनुराग स्पष्ट रूप से जान पड़ता है और इस काव्य-

संग्रह में निम्नलिखित कविताओं में प्रकृति की स्वाभाविक झाँकी दृष्टिगोचर होती है—दो पाटों की दुनिया, सत्य का अपराध, एक स्वप्न, नया बच्चा, कबन्धों का नाच, पत्तीदार रोशनी का दम्भ, भोजपत्र की रेखा, विमान सी संचरण, समाधि में यात्रा, समयातीत क्षण, चलती हुई रील, गंध लेने लगी आकार, रोएँ भर का स्पर्श, बसंत की पहली शाम, रूप विभ्रमा चाँदनी, चाँदनी: बिखरी हुई, कातिक चाँद की रात, दिक पुरुष, शरद नीहारिका का देह स्वप्न, आरसी ताल, लाल गुलाबों की शाम, एक टुकड़ा चाँद, कटा हुआ आसमान, हटती रोशनी, कोणार्क पर तीसरा पहर, बरकुल चिलका झील, एक असंकल्पित शाम और अनबींवे मन का गीत। इस प्रकार तिरसठ कविताओं के इस काव्य संग्रह में भी सत्ताइस कविताएँ प्रकृति सम्बन्धी हैं और इन कविताओं में हमें सर्वत्र ही नवीनता के दर्शन होते हैं। यहाँ एक उदाहरण दर्शनीय है—

साँवले ऊँटों के सुडौल कूबड़
पहाड़ियों की अनबरत हँसी
छोटे झरने में
गोल ताल की आरसी में बदलती
अनाम प्रेयसियों का बरबस भान
नोकीले कुँई फूलों में
फाँक कटे पुरइन के वल्कल से बँधे—
झाँक कर देख रहे
ललचाते नारियलों के कोरे पेड़'
वर्जित को

इससे स्पष्ट हो जाता है कि प्रकृति के प्रति कवि माथुर के हृदय में सर्वदा ही अनुराग रहा है और यही कारण है कि अपनी काव्य साधना के प्रथम चरण से लेकर अब तक उन्होंने अपनी कृतियों के अनूठे चित्र अंकित किये हैं।

माथुर के काव्य में प्रकृति चित्रण के विविध रूप

जैसा कि आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का कहना है 'अनन्त रूपों में प्रकृति

हमारे सामने आती है, कहीं मधुर सुसज्जित या सुन्दर रूप में, कहीं रूखे बेडौल या कर्कश रूप में, कहीं मत्त, विशाल या विचित्र रूप में, कहीं उग्र, कराल या भयंकर रूप में।' अतएव काव्य में प्रकृति चित्रण की विविध प्रणालियाँ प्रचलित हैं और समीक्षक प्रकृति चित्रण की विविध प्रणालियों का उल्लेख करते समय उनकी चार से लेकर ग्यारह-बारह तक संख्या मानते हैं पर हम प्रकृति चित्रण की केवल निम्नलिखित प्रणालियाँ मानने के पक्ष में हैं— आलम्बन, उद्दीपन, अलंकार या अलंकृत रूप, रहस्य भावना की अभिव्यक्ति, मानवीकरण, नीति और उपदेश का माध्यम तथा प्रतीक। हम यहाँ यह स्पष्ट कर देना उचित समझते हैं कि उक्त प्रणालियाँ एक दूसरे से सर्वथा पृथक नहीं हैं और उनमें से किसी एक रूप में किए जाने वाले प्रकृति चित्रण में दूसरे रूप या रूपों से भी सहायता ली जा सकती है। उदाहरणार्थ, आलम्बन रूप में देखा जाने वाला कोई पदार्थ रहस्य भावना के लिए भी पथ प्रशस्त कर सकता है। साथ ही यहाँ यह भी स्मरणीय है कि प्रयोगवादी कवियों ने नूतन सौंदर्य-बोध के कारण प्रकृति चित्रण की उक्त प्रणालियों को मान्यता नहीं दी है पर श्री गिरिजाकुमार माथुर की कृतियों में अवश्य इनमें से कुछ प्रणालियों का प्रयोग हुआ है जिनका परिचय यहाँ दिया जा रहा है।

सामान्यतया कवि माथुर की कृतियों में प्रकृति चित्रण की आलम्बन प्रणाली को सर्वाधिक अपनाया गया है और 'आलम्बन रूप में प्रकृति-चित्रण करते समय प्रकृति बहुधा साधन न बनकर साध्य बन जाती है और कवि अर्थ-ग्रहण की अपेक्षा बिम्ब ग्रहण पर अधिक जोर देता है तथा अपनी सूक्ष्म प्रकृति पर्यवेक्षणी शक्ति द्वारा प्रकृति के सूक्ष्मातिसूक्ष्म तत्वों के प्रति आकृष्ट हो प्राकृतिक वस्तुओं के अंग प्रत्यंग, वर्ण आकृति तथा आस पास की परिस्थितियों का परस्पर संश्लिष्ट वर्णन करता है।' इस प्रकार आलम्बन रूप में प्रकृति चित्रण करते समय प्रकृति का यथातथ्य चित्रण ही किया जाता है और कवि माथुर की काव्य कृतियों में अनेक स्थलों पर प्रकृति का आलम्बन रूप में अत्यंत हृदयग्राही चित्रण किया भी गया है। यहाँ 'धूप के धान' काव्य संग्रह की प्रसिद्ध रचना 'ढाकबनी' का कुछ अंश उदाहरणार्थ प्रस्तुत किया जा रहा है—

सनसनाती साँझ सूनी, वायु का कठला खनकता
झींगुरों की खंजड़ी पर झाँझ सा बीहड़ झनकता।
कंटकित बेरी करोंदे महकते हैं सागौन वन के
सुन्न हैं सागौन वन के कान जैसे पात चौड़े
ढूह, टीले, टौरियों पर धूप सूखी घास भूरी
हाड़ टूटे देह कुबड़ी चुप पड़ी है गैल बूढ़ी
ताड़ तेंदू नीम रैंजर चित्र लिखीं खजूर पातें
छाँह मंदी डाल जिन पर ऊगती है शुक्ल सातें
बीच सूने में बनैले ताल का फैला अतल जल

इस प्रकार कवि ने प्रकृति-चित्रण में पूर्ण तन्मयता दिखाई है और उसकी उक्तियों में प्रकृति अत्यन्त ही चेतन हो उठी है तथा उसका एक-एक उपकरण सजीव प्रतीत होता है। यहाँ यह स्मरणीय है कि उक्त पंक्तियों में कवि ने सांध्यकालीन वातावरण का मनोरम वर्णन किया है और वह रमणीय प्रकृति के साथ-साथ भयावने चित्र भी अंकित करता है—

पूर्व से उठ चाँद आधा स्याह जल में चमचमाता
बन चमेली की जड़ों से नाग कसकर लिपट जाता

इसी प्रकार कवि ने कहीं-कहीं प्रकृति वर्णन को अधिकाधिक वायवीयता भी प्रदान की है; जैसे—

चाँदनी की रैन चिड़िया, गंध फलियों पर उतरती
मूंद लेती नैन गोरे, पाँख धीरे बंद करती
गंध घोड़े पर चढ़ी दुलकी चली आती हवाएँ
टाप हल्के पड़ें जल में गोल लहरें उछल आएँ

कवि ने प्रकृति की नैसर्गिक शोभा का चित्रण मात्र ही नहीं किया बल्कि उसने वहाँ के निवासियों के घर, बर्तन आदि का भी उल्लेख किया है क्योंकि उनके बिना उक्त चित्रण अधूरा ही जान पड़ता। इस प्रकार कवि कहता है—

बीच पेड़ों की कटन में हैं पड़े दो-चार छप्पर
हाँडियाँ, मचिया कठौते, लट्ठ, गूदड़ बैल बक्खर

राख, गोबर, चरी आँगन, तेल, रस्सी, हल कुल्हाड़ी
सूत की मोटी फतोई, चक्का, हँसिया और गाड़ी

वस्तुतः कवि माथुर का दृष्टिकोण हमेशा व्यापक रहा है और वह ढाकबनी की प्राकृतिक सुषमा पर जितना अधिक विभोर हुए थे उतनी ही तीव्र प्रतिक्रिया उन्होंने उस वन प्रदेश की जनता के जन-जीवन की गर्हित दशा पर व्यक्त की है—

है यहाँ की जिन्दगी पर शाप नल का स्याह भारी
भूख की मनहुस छाया जबकि भोजन सामने हो
आदमी हो ठीकरे सा जबकि साधन सामने हो
धन बनस्पति भरे जंगल और यह जीवन भिखारी

अन्त में कवि ने यह आशा भी प्रकट की है कि 'ढाकबनी' की वर्तमान दशा में पुनः चमक आयेगी और निष्क्रियता समाप्त होगी तथा फिर—

लाल पत्थर, लाल मिट्टी, लाल कँकड़, लाल बजरी
फिर खिलेंगे ढाक के बन, फिर उठेगी फाग कजरी

माथुर जी की कृतियों में प्रकृति चित्रण की उद्दीपन नामक प्रणाली का भी कई स्थलों पर सफल प्रयोग हुआ है और यहाँ यह स्मरणीय है कि 'आलम्बन रूप में प्रकृति चित्रण करते समय कवि अपनी भावस्थिति में ही प्रकृति के समक्ष रहता है पर काव्य का विस्तार तो भावाभिव्यक्ति में ही है और प्रकृति द्वारा ही कवियों को भावोद्दीपन की प्रेरणा होती है। इस प्रकार स्वाभाविक ही कवियों ने अपनी कृतियों में प्रकृति के उद्दीपन रूप का ही अधिक चित्रण किया है और हिन्दी साहित्य में उद्दीपन रूप में प्रकृति का वर्णन प्राचीनकाल से ही बहुतायत से होता रहा है तथा रीतिकाल में तो यह परिपाटी सबसे अधिक प्रचलित रही है। इस प्रकार उमड़ते हुए मेघों को देखकर वियोगिनी को उनकी गरज में प्रिय की आकुल पुकार सुनाई देने लगती है और पपीहे की पुकार आधी रात में उसके विरह व्यथित हृदय पर एक टीस सी उत्पन्न करने लगी तथा बैशाख में पलाश के फूले हुए पुष्प उसके हृदय को कचोटने लगे। अतएव नायिकाओं के विरह और मिलन

की घड़ियों में ऐसी ही झाँकियाँ प्रकृति की सुरम्य क्रीड़ास्थली में प्राचीन कवियों द्वारा प्रस्तुत की गयीं।

यद्यपि आधुनिक काल में यह परिपाटी सर्वप्रमुख स्थान न पा सकी और प्रकृति के अन्य रूपों की भी कल्पना की गयी पर आधुनिक कवियों ने भी प्रकृति के उद्दीपन रूप को अपनी लेखनी का विषय अवश्य बनाया है। इतना अवश्य है कि उनके इस वर्णन में अधिक रमणीयता है, मानस को झकझोर देनेवाली वेदना है और मन को प्रसन्न कर देनेवाली मस्ती है।' इस प्रकार कवि माथुर ने भी उद्दीपन रूप में प्रकृति चित्रण करते समय अपनी उक्तियों में नवीनता का समावेश किया है और जहाँ कि प्राचीन कवि चाँदनी का वर्णन नायक-नायिका की मनःस्थिति के अनुरूप करते थे वहाँ अब चाँदनी को देख कवि माथुर के हृदय में मिश्रित भावों का उदय होता है और वह अपनी मधुर तिक्त सभी भावनाओं को व्यक्त कर देते हैं—

कितना सुख पाया है,
तुमसे ओ चाँदनी
देह चूर रस से है,
मन में है चाँदनी
× + +
भर दी है जीवन में,
कितने प्रिय स्वादमयी
सोंधी, मीठी, लोनी,
खटमिट्ठी चाँदनी

सामान्यतया अधिकांश कवियों ने विप्रलम्भ श्रृंगार वा वियोग श्रृंगार में ही प्रकृति के उद्दीपन रूप का वर्णन किया है और संयोगावस्था में जो प्राकृतिक वस्तुएँ सुखदायिनी प्रतीत होती थीं वे ही अब वियोगावस्था में पीड़ावर्द्धिनी जान पड़ती हैं। इस प्रकार कवि माथुर ने भी निम्नलिखित पंक्तियों में बसन्त के उद्दीप्त व्यथा को भूलती हुई नायिका की मनोदशा का वर्णन स्वयं उसके शब्दों में किया है—

आज फूल रही कचनार
श्याम नहीं महलों में
सखी साजें बसंती सिंगार
सेंदुर भरें अलकों में
चाँद के संग हँसे
बात कहते रुकें
बाँह छोड़ें कसें
+ × +
बीती जाय बसन्ती बहार
रैन बीते पलकों में
आज फूल रही कचनार
श्याम नहीं महलों में

वस्तुतः कई कवियों ने तो प्रकृति को उपमा, रूपक आदि अलंकारों के रूप में भी प्रस्तुत किया है और चूंकि वस्तु वर्णन में अलंकार विशेष रूप से सहायक होते हैं अतः प्राकृतिक दृश्यों के चित्रण में भी उनकी सहायता लेने से प्रकृति सौन्दर्य द्विगुणित हो उठता है। जिस प्रकार रम्य से रम्य भाव और कल्पना भी अलंकारों के अभाव में उतने सुन्दर नहीं प्रतीत होते जबकि साधारण भ व भी उनके सहयोग से चमत्कृत हो उठते हैं, उसी प्रकार प्राकृतिक वस्तुओं, कार्यों तथा व्यापारों के चित्रण में जब अलंकारों की सहायता ली जाती है तो वे और भी अधिक चमत्कृत तथा चित्ताकर्षक हो जाते हैं। स्मरण रहे संस्कृत और हिन्दी कवियों ने स्वाभाविक ही अपनी मनोभावनाओं को अनुरंजित करने के लिए प्रकृति से सहायता ली है तथा उससे उपमाएँ उधार लेकर लौकिक भावों, भावनाओं और प्रकृतियों का दिग्दर्शन कराया है। फलतः जड़ और चेतन तथा प्रकृति और मानव में समानता तो उत्पन्न हो ही जाती है; साथ ही प्राकृतिक वस्तुओं को चेतन मानवशरीर का उपमान बन जाने के कारण विशेष महत्व भी प्राप्त हो जाता है। यही कारण है कि न केवल प्राचीन हिन्दी कवियों ने अपितु आधुनिक हिन्दी कवियों ने भी प्रकृति का आलंकारिक रूप में वर्णन कर उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा और

रूपकातिशयोक्ति अलंकारों की सहायता से प्रकृति और मानव में सामंजस्य भी स्थापित किया है।' इस प्रकार कवि माथुर ने भी उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा आदि अलंकारों का आश्रय ले प्रकृति के मनोहर चित्र अंकित किए हैं पर उनके इन चित्रों में नवीनता ही है क्योंकि उन्होंने प्राचीन कवियों की भाँति परम्परायुक्त उपमानों को ही ग्रहण नहीं किया बल्कि उपमानों के क्षेत्र में वृद्धि भी की है। उदाहरणार्थ; यहाँ माथुर जी काव्य संग्रह 'धूप के धान' की एक कविता 'चंदरिमा' की कुछ पंक्तियाँ उद्धृत हैं—

यह झकाझक रात
चाँदनी उजली कि सूई में पिरो लो ताग
चाँदनी को दिन समझकर बोलते हैं काग
हो रही ताजी सफेदी नये चूने से
पुत रहे घर द्वार
चाँद पूरा साफ
आर्ट पेपर ज्यों कटा हो गोल
चिकनी चमक का दलदार
यह नहीं चेहरा तुम्हारा
गोल पूनम सा
मांसल चीकने तन का
क्योंकि यह तो सामने ही दिख रहा है

इसी प्रकार कवि माथुर का प्रतीक विधान भी उत्कृष्ट है और उन्होंने अपनी कृतियों में जीवन की विभिन्न अवस्थाओं, भावनाओं तथा क्रिया व्यापारों का चित्रण करने के लिए प्रकृति प्रांगण से ही प्रतीक ग्रहण किए हैं। उदाहरणार्थ; माथुर जी ने जड़तामय वातावरण की सृष्टि के लिए तदनुरूप ही प्रकृति का गतिहीन रूप अंकित किया है—

कुहरा भरा भोर जाड़ों का,
शीत हवा में ठंडे सात बजे हैं,
ठिठुरन से सूरज की गरमी जमी हुई है,
सारा नगर लिहाफों में सिकुड़ा सोता है।

और व्यक्तियों की थकानभरी मनोवृत्ति को अधिक सघनता से चित्रित करने के लिए भी उन्होंने प्राकृतिक उपादानों का ही सहारा लिया है—

दिन भर थककर दफ्तर में ही सूरज डूबा
अल्मारियों दरवाजों में सोया उजियाला
गोधूली हो गई धूल से ढकी, फाइलों के पन्नों पर
कब्रों सा सुनसान समाया ।

यद्यपि माथुर जी की कविता में प्रकृति के प्रति रहस्यात्मक भावना के दर्शन नहीं होते और न उन्होंने प्रकृति के चित्रण की उपदेशात्मक प्रणाली को ही अपनाया है पर उन्होंने प्रकृति का उपयोग उसका मानवीकरण करके अवश्य किया है । इस प्रकार माथुर जी प्रकृति में मानव रूप, मानव गुण, मानव क्रियाकलापों और मानव भावना का आरोप कर प्रकृति को सचेतन रूप में देखते हैं अतः उनकी कृतियों में प्रकृति सजीव जान पड़ती है; जैसे—

उतरती आती छतों से
सर्दियों की धूप
उजले ऊन की मृदु शाल पहिने
वह मुंडेरों पर ठहरकर
झाँकती है झंझरियों से

इन पंक्तियों में धूप अत्यन्त सजीव रूप में अंकित हुई है और कवि धूप का चित्रण गृहिणी के रूप में करते हुए कहा है—

धुले मुख सी धूप यह गृहिणी सरीखी
मंद पग धर आ गई है ।

इसी प्रकार प्रकृति का मानवीकरण करते समय कहीं-कहीं कवि के रोमांटिक भाव भी उभरकर आये हैं और वह 'रात हेमन्त की' नामक कविता में हेमन्त ऋतु की कामिनी रात्रि का वर्णन करते हुए कहता है—

कामिनी सी अब लिपटकर सो गई है
रात यह हेमन्त की

दीप तन बन ऊष्म करने
सेज अपने कंत की

\+ + + +

धूप चंदन रेख सी
सलमा सितारा सांझ होगी
चाँदनी होगी न तपसिनि
दिन बना होगा न योगी
जब कली के खुले अंगों पर लगेगी
रंग छाप वसंत की

निष्कर्ष—

उक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि माथुर को प्रकृति चित्रण में आशातीत सफलता प्राप्त हुई है और उनकी कृतियों में प्रकृति के अनेक सुन्दर कलापूर्ण एवं हृदयग्राही चित्र विद्यमान हैं। यद्यपि एक समीक्षक ने कवि माथुर के प्रकृति चित्रण पर यह आक्षेप किया है कि "·········पंत आदि ने जितनी सफलता से प्रकृति के कोमल रूप के साथ ही उसके भीषण रूप को भी चित्रबद्ध किया है, माथुर जी का प्रकृति चित्रण न तो उतना व्यापक एवं संवेदनापूर्ण ही हो पाया है और न उसमें उतनी विविधता ही आ पाई है। ········ निष्कर्ष रूप में माथुर जी की रचनाओं में प्रकृति चित्रण के स्थल पूरक रूप में ही प्रायः आये हैं····· ।" हम इन आरोपों से तनिक भी सहमत नहीं हैं और हमें तो यही जान पड़ता है कि उक्त समीक्षक ने माथुर जी की सभी काव्य कृतियों का सम्यक् अनुशीलन किए बिना ही उक्त मत व्यक्त किया है। सत्य तो यह है कि कवि माथुर की अनेक कविताएँ न केवल विशुद्ध प्रकृति सम्बन्धी हैं बल्कि उनमें प्रकृति का स्वतंत्र चित्रण भी हुआ है और कई स्थलों पर तो हमें प्रकृति के प्रति कवि के व्यापक दृष्टिकोण का परिचय भी मिलता है।

कवि माथुर की काव्य-सुषमा

प्रारम्भ

जैसा कि डा० गुलाबराय का कहना है 'कवि साधारण मनुष्य की अपेक्षा कुछ अधिक भावुक और विचारशील होता है किन्तु वह अपने अनुभव को अपने तक सीमित नहीं रखना चाहता है। वह अपने हृदय का रस दूसरों तक पहुँचाकर उनको भी अपनी तरह प्रभावित करने को उत्सुक रहता है। इस प्रकार काव्य के दो पक्ष हो जाते हैं—एक अनुभूति पक्ष और दूसरा अभिव्यक्ति पक्ष। इसी को भाव पक्ष और कलापक्ष भी कहते हैं। पाश्चात्य समीक्षकों द्वारा प्रतिपादित काव्य के चार तत्व (रागात्मक तत्व, कल्पना तत्व, बुद्धि तत्व और शैली तत्व) इन्हीं दो पक्षों से सम्बन्धित भी हैं।' इस प्रकार हम भी काव्य के भाव पक्ष और कलापक्ष नामक दो पक्ष ही मानते हैं और कवि माथुर की काव्यगत विशेषताओं का विवेचन करते समय इन्हीं दो पक्षों का सोदाहरण परिचय देंगे पर हम इस विवेचन के पूर्व यहाँ संक्षेप में कवि माथुर का काव्य-सम्बन्धी दृष्टिकोण भी स्पष्ट करना उचित समझते हैं।

यद्यपि माथुर जी समालोचक की अपेक्षा कवि ही अधिक हैं और प्रयोगवादी काव्यधारा के प्रवर्तक अज्ञेय के सदृश्य उन्होंने विस्तारपूर्वक अपनी समीक्षाएँ भी प्रस्तुत नहीं कीं लेकिन 'तार सप्तक' के वक्तव्य एवं 'धूप के धान' आदि कुछ काव्यसंग्रहों की भूमिकाओं तथा कतिपय प्रकाशित निबन्धों

में माथुर जी का काव्य सम्बन्धी दृष्टिकोण अवश्य स्पष्ट हुआ है। इधर सन् १९६६ में माथुरजी के समीक्षात्मक विचारों का संग्रह 'नयी कविता : सीमाएँ और सम्भावनाएँ" नाम से प्रकाशित भी हुआ है तथा इस कृति में उन्होंने नवीन काव्यधारा की विभिन्न प्रवृत्तियों का नितांत नूतन अध्ययन प्रस्तुत किया है। अब हम यहाँ उक्त उपलब्ध सामग्री के आधार पर संक्षेप में श्री गिरिजाकुमार माथुर के काव्य सम्बन्धी दृष्टिकोण की झांकी प्रस्तुत करेंगे।

माथुर जी का काव्य सम्बन्धी दृष्टिकोण

श्री गिरिजाकुमार माथुर को प्रयोगवाद का प्रारम्भिक कवि और नयी कविता का निर्माता कहा जाता है अतः उन्होंने प्रयोगवाद और नयी कविता के सम्बन्ध में अपना दृष्टिकोण कई प्रसंगों में स्पष्ट किया है। सामान्यतया समीक्षकों का कहना है कि छायावादोत्तर काव्य में मनुष्य 'मध्यवर्गीय हताशा' का प्रतीक बनकर उपस्थित हुआ पर प्रयोगवादी समीक्षकों का मत है कि उन्होंने ही सर्वप्रथम साहित्य में मानवीय वैशिष्टच और आत्म-विश्वास की धारणा की प्रतिष्ठा की है। कवि माथुर ने भी 'नयी कविता की वर्तमान स्थिति पर विचार करते हुए कहा है '····सभी पक्षों में इस इकाई का स्वरूप वायवी था, एक भावना का सुदूर आभास भर था और यद्यपि उसके आस-पास बाह्यान्तर जैसे कितने ही सिद्धान्तादर्शों का जाल बुना गया फिर भी उसका रूप सद्भावना, शुभकामना के स्तर पर ही रहा। वहाँ यह,स्पष्ट नहीं हो सका कि मानव असल में किस वस्तु का नाम है, कौन-सा है, उसकी स्थिति और मूल्य वास्तव में क्या है और विश्व संस्कृति के वर्तमान विकास के संदर्भ में उसका भविष्य किस दिशा की ओर उन्मुख है।'

वस्तुतः प्रयोगवाद ने ही मनुष्य को सर्वप्रथम विवेचना की इकाई के रूप में महत्ता दी है और माथुरजी का कहना है कि 'पक्ष निरपेक्षता के नये सामाजिक संदर्भ में अब तक की परिभाषाएँ अपर्याप्त हो चुकी थीं। विभिन्न लैंसों से देखी हुई आदमी की तस्वीर 'आउट आफ फोकस' हो चुकी थी। आदमी तेजी से बदलता जा रहा था पर लैंस नहीं थे। शुरू में यह आदमी

भावनाशील 'रोमानी' व्यक्ति के रूप में प्रकट हुआ जो अपनी ऐतिहासिकता और अपने संघर्षों के प्रति जागरूक था, दूसरी ओर आत्मानुभूति भरे हीरों के रूप में जिसे अपने अहं का प्रथम साक्षात्कार हुआ था। तत्पश्चात् सांस्कृतिक मूल्यों के प्रतीक प्रभु के रूप में और उसी के साथ संक्रांति के बीच पड़ा 'शहीद मसीहा।' फिर दृष्टि अधिक बिस्तारों में उतरी और आधुनिक युग में मूल्यों के विघटन की समस्या सामने आई। इस बिन्दु पर हमने उसे टूटा हुआ, लांछित, पथ भ्रष्ट, पराजित और विकृतियों से खंडित पाया।' इस प्रकार 'यह स्वीकार किया गया कि यद्यपि आदमी तुच्छता, क्षुद्रता और विकृतियों के कर्दम में पड़ा हुआ है और उसका व्यक्तित्व लघुता से कुंठित है, फिर भी उसका आत्मसम्मान मरा नहीं है, जीवित है और रह सकता है।'

माथुर जी जटिल अनुभवों को सहज रूप में अभिव्यक्ति प्रदान करना साहित्यकार का प्रमुख लक्षण मानते हैं और काव्य के लिए उन सभी पक्षों एवं प्रवृत्तियों के तत्वों को ग्राह्य बतलाते हैं जिनका रास्ता मानवीयता, सामाजिक न्याय तथा जीवन भविष्य की आस्था से होकर जाता है। साथ ही उन्होंने प्रयोगवादी कविता के विषय के सम्बन्ध में विचार करते हुए यह मत व्यक्त किया है कि साधारण से साधारण वस्तु भी कविता का विषय बन सकती है। इस प्रकार उन्होंने 'धूप के धान' के निवेदनम् में यही कहा है 'काव्य साहित्य की सीमाओं का इन नवीन प्रयत्नों से बहुत बड़ा प्रसार हुआ है, उसके द्वारा नयी दिशाएँ खुली हैं। जीवन का छोटे से छोटा पक्ष, साधारण से साधारण विषय अब काव्य की गरिमा के अयोग्य नहीं रहा।'

सत्य तो यह है कि माथुर जी की विचारधारा अन्य प्रयोगवादी कवियों से बहुत कुछ पृथक् है और वह न तो नकेनवादियों के समान जटिलता को काव्य का प्राण तत्व ही मानते हैं और न अज्ञेय की तरह उसे कलाकार की विवशता तथा आपद्धर्म के रूप में ही स्वीकार करते हैं। इस प्रकार कवि माथुर दुरूहता को श्रेष्ठता की कसौटी नहीं मानते और उनका यही कहना है कि अत्यंत जटिल अनुभवों को अत्यंत सहज और सर्वग्राह्य रूप में व्यक्त करना तथा जटिलताओं के मूल-में निहित सार्वजनीन सत्य के सूत्र को प्रकट करना

श्रेष्ठ साहित्य का लक्षण है। साथ ही वह यह भी कहते हैं कि यदि कवि मानस में जटिलता रही तो उसका प्रभाव अभिव्यंजना के उपकरणों की अस्वा-भाविकता, अपूर्णता, भग्नता और रूप व्यक्तित्व विहीनता में स्पष्ट परिलक्षित होगा। इस प्रकार 'भाषा जान बूझकर बिगाड़ी या गढ़ी हुयी होगी जिसका व्यावाहारिक जीवन से कोई सम्बन्ध न होगा, चेष्टापूर्ण लाये हुए निरर्थ, बोध-शून्य प्रतीक होगे, उपमानों में कोई तारतम्य नहीं होगा और छन्द के नाम पर भ्रष्ट गद्य भी न मिलेगा।

कवि माथुर ने नयी कविता की उपलब्धियों पर विचार करते हुए उसकी माध्यमोपलब्धि को प्रमुख माना है और बाह्याकार की विशिष्टता को नयी कविता में आधुनिकता अभिहित करने वाला प्रमुख तत्व बतलाया है। साथ ही उन्होंने नयी कविता को एक सीमा तक ही रूपवादी आंदोलन कहना उचित माना है और उनका यही कहना है कि कविता में बाह्यारोपित किसी भी अभिव्यक्ति लय की अनिवार्यता नहीं होती बल्कि कविता में स्वत: ही अनभिव्यक्त लय होती है जो उसे रचना प्रक्रिया के अन्तर्सामंजस्य क्रम या Chain Sequence से प्रा त होती है। इसके बावजूद माथुर जी अपनी कविताओं में छन्द को अनिवार्य मानते हैं और उन्होंने अपनी कई कृतियों में मुक्त छन्द का सफल प्रयोग भी ि‍या है। साथ ही उन्होंने आधुनिकता को युग की चेतना समस्या, निकायों के अनुरूप संवेदना (Scnsivity) दृष्टिकोण प्रतिक्रिया तथा अभिव्यंजना में निहित माना है और उनका यही मत है कि नवीन औद्योगिक युग की मांग त्वरितमाध्यमों की होने के कारण खंड काव्य, सांग कविता और क्रमबद्ध लिरिक को आधुनिक नहीं कहा जा सकता। इस प्रकार उनका यही विश्वास है कि नयी कविता के माध्यमों की उपलब्धि हमारे देश के सामाजिक और आधुनिक औद्योगिक विकास के अनुरूप है।

माथुर जी का कहना है कि हिन्दी कविता के मूल में व्यक्ति को परिभाषित करने का प्रयत्न अभिनिर्विष्ट है और स्वयं उन्होंने द्विवेदी युग से आज तक की कविता में व्यक्ति की जो धारणा ग्रहण की गयी है उसे आकलित करने का प्रयत्न भी किया है। उनका मत है कि

मनुष्य को महाकाव्यों में महापुरुष, पुनः एक 'टाइप' और छायावाद में अमूर्त व्यापक आत्मा की खंड इकाई तथा प्रगतिवाद में ठोस धरातल पर स्थित व्यक्ति के रूप में देखा गया और प्रयोगवाद ने समूह व्यक्तित्व के निराकार पुतले की स्थापना की पर वह राष्ट्रीय तत्व के अनुकूल नहीं थी अतः नयी कविता में मानव इकाई को केन्द्र रूप तथा समाज के व्यापक संदर्भ से युक्त कर रखा गया। इस प्रकार माथुर जी प्रयोगवाद और नयी कविता में अंतर भी मानते हैं तथा उनका कहना है कि 'नयी कविता में एक ओर सामाजिक दायित्वों की जागरूकता और प्रगतिवादी विचारधारा के पृष्ठ में उदित वस्तुपरक दृष्टि तथा व्यापक मानवीयता का समावेश हुआ था तो दूसरी ओर व्यक्ति और इकाई को प्राथमिकता दी गई थी। नयी कविता का क्रमशः विकसित स्वर व्यक्ति की पावनता और सामाजिक गरिमा की आकांक्षा का ही स्वर है।'

स्वयं माथुर जी कवि के आत्मवक्तव्य देने की प्रवृत्ति के पक्ष में भी नहीं हैं और उनका कहना है कि नयी कविता में इस प्रकार के वक्तव्यों, जैसे 'मैं कुत्ता हूँ, लाश हूँ, गलितांग हूँ, वमन हूँ, जारज हूँ, फेंका हुआ भ्रूण हूँ, शहीद हूँ, खंडित हूँ, ओरे, ओ, हे पिता, हे पूर्वज, दर्द, दर्द दर्द' आदि की अधिकता रही है। इसीलिए वह मानते हैं कि 'पहले तो स्टेटमेंट कविता नहीं हो सकता। फिर यदि स्टेटमेंट यह हो कि मैं खंडित हूँ, भग्न हूँ, लाश हूँ' तो उसका उत्तर यह होगा, ठीक है होंगे आप अपने को, जो चाहे समझें दुनिया को उससे क्या लेना देना है।' इस प्रकार कवि माथुर मन को अधिक पैना रखकर सूक्ष्म अनुभूतियों के स्तर पर वस्तुस्थिति को पकड़ना आवश्यक समझते हैं जिनसे मन के असंख्य आयामों के भावान्दोलनों को अभिव्यक्ति में उतारा जा सकता है।

कवि माथुर ने यह भी स्वीकार किया है कि प्रयोगवादी काव्यधारा या नयी कविता एक ढांचे में बँध सी गयी है और यही कारण है कि उन्हें अब यह आभास होने लगा है कि 'जैसे यह सारी सैकड़ों कविताएँ एक ही कवि की लिखी हुई हैं, सिर्फ लेखकों की जगह कुछ काल्पनिक नाम गढ़कर

रख लिए गए हैं, जो अदल-बदल कर छपते रहते हैं। इसका कारण यह है कि अधिकतर कविताओं में प्रतीक, उपमान, शब्दावली, कथ्यशैली, आटोमेटिक ढंग से प्रयुक्त प्रचलित सत्यवचन, जैसे दर्द, मूल्य, कुंठा, प्रभु आदि पौराणिक या महाभारतकालीन संदर्भ, यहाँ तक कि शीर्षक छपाने का ढंग और पढ़ने का दर्द भरा, अफअर्दी, रोमानी तरीका भी एक सा हो गया है।' इस प्रकार श्री गिरिजाकुमार माथुर हमारे समक्ष एक निर्भीक एवम् स्पष्टवादी विचारक के रूप में आते हैं और हम उनके इन विचारों को ध्यान में रखकर उनकी काव्यगत विशेषताओं का परिचय देंगे।

कवि माथुर की भावाभिव्यक्ति और रस-योजना

सामान्यतया किसी भी कवि की भाव व्यंजना पर विचार करते समय भावों से हमारा तात्पर्य रीति शास्त्र के रस पोषक भावों से रहता है अर्थात् उन भावों पर प्रकाश डाला जाता है जो कि रस परिपाक में पूर्ण समर्थ हो सके हैं लेकिन श्री गिरिजाकुमार माथुर को प्राचीन परिपाटी का कवि न समझना चाहिए। सत्य तो यह है कि कवि माथुर प्राचीन शास्त्रीय नियमों के विरोधी रहे हैं और साहित्य में प्रयोग ही उनका लक्ष्य रहा है। साथ ही वह प्रबंधकार के रूप में हमारे सामने नहीं आते क्योंकि उन्होंने तो प्रायः स्फुट कविताएँ ही लिखी है और मुक्तक काव्य रचना में ही अपनी काव्य प्रतिभा का परिचय दिया है। अतएव कवि माथुर काव्य में किसी विशेष रस या अलंकार की योजना करना ही कवि धर्म नहीं समझते और शास्त्रीय दृष्टि से उनकी कविता में विभिन्न रसों के उदाहरण खोजना भी उपयुक्त न होता। इस प्रकार हम पहले ही कवि माथुर की विभिन्न काव्य प्रवृत्तियों का उल्लेख करते हुए उनकी भाव धारा का परिचय देंगे। और तदुपरान्त संक्षेप में रसाभिव्यक्ति की दृष्टि से उनकी कविता का मूल्यांकन किया जाएगा।

वस्तुतः कवि माथुर की काव्य-प्रवृत्तियों का उल्लेख करते समय हमारा ध्यान सर्वप्रथम इस ओर जाता है कि 'तारसप्तक के कवियों में दुराग्रह से मुक्त, सहज और संवेदनशील कवियों में गिरिजाकुमार का नाम

सर्वप्रथम लिया जा सकता है। अपना कवि जीवन ब्रजभाषा से आरम्भ करके इन्होंने नयी कविता की जो यात्रा तय की है उसमें स्थान-स्थान पर प्रणय, सौन्दर्य, संवेदन, रस, रंग और रूमानी प्रवृत्तियों के साथ-साथ सामाजिकता की अत्यन्त पुष्ट भाव.नुभूति भी लक्षित होती है।' इस प्रकार माथुर जी की काव्यकृतियों में स्वाभाविक ही विविध काव्य प्रवृत्तियों के दर्शन होते हैं और हाँ, देवेश ठाकुर के कथनानुसार 'इनमें वैयक्तिक रूमानी भावना और युगजीवन का यथार्थ दोनों प्रकार की अनुभूतियाँ सन्निहित हैं। अभिव्यक्ति में सहजता, चित्रोपमता तथा शालीनता है। वह न तो छायावादी काव्य के समान दुरूह और अस्पष्ट है और न भोगवादियों की भाँति एकदम मांसल। अन्य प्रयोगवादियों का-सा अभिनव के प्रति दुराग्रह भी उनमें नहीं है। उनकी अभिव्यक्ति रससिक्त बोधगम्य तथा मार्मिक है। जीवन की व्यक्तिगतता और समाज के वैषम्य दोनों को उन्होंने महत्व दिया है किन्तु अंत में व्यक्ति की अपेक्षा समाज को वैशिष्ट्य प्रदान करने की प्रवृत्ति ही विशेष रूप से मुखरित हुई है।' इस प्रकार कवि माथुर अपनी प्रारंभिक रचनाओं में ही जन मन से समन्वित होकर एक नवीन रचना की आकांक्षा करते हैं और उद्घोषपूर्ण स्वर में कहते हैं—

जन जन का जीवन गीत बने, उठते स्वर का यह गीत नया
हर चरणों की है चाप नयी हर मंजिल का संगीत नया।

सत्य तो यह है कि माथुर जी की भाव व्यंजना विशद और व्यापक है तथा उनकी काव्य-कृतियों के अनुशीलन से स्पष्ट हो जाता है कि उन्होंने अपनी राष्ट्रीय एवं महादेशीय सीमाओं को अधिक से अधिक विस्तृत किया है। इस प्रकार उनके 'शिला पंख चमकीले' नामक काव्य संग्रह में संकलित 'हमारा देश' शीर्षक कविता में पराधीन अफ्रीका को एक सबल व्यक्तित्व देने का प्रयास किया गया है और इस कविता में अफ्रीका नींद से जागकर कहता है—

देखो, मेरी स्याह बनैली भूमि उर्वरा,
जिस पर पिता नील बहता है

उगल रही हैं खानें सोना
अभ्रक, ताँबा, जस्ता, क्रोमियम
टीन, कोयला लोह, प्लेटिनम
युरेनियन, अनमोल रसायन
केपोक, सिल्क कपास, अन्न धन,
द्रव्य फासफेटो से पूरित
मेरा वह नगराज एटलस
की रेत में रिस रिस फैली
मेरे सोने चाँदी की रज
वन तरुओं से चता अमरत
किन्तु जमे सोडे की झीलों सा
अब मेरा पीड़ित अंतर—

इसमें कोई संदेह नहीं कि अपने देश और संस्कृति के अतिरिक्त महा-देशीय इतिहास, भूगोल और संस्कृति को अपनी कविता में मूर्त करना कवि माथुर का एक प्रशंसनीय कार्य है और हम देखते हैं कि उन्होंने न केवल भारत बल्कि अफ्रीका की पराधीनताजन्य व्यथा को भी समझा है तथा 'हृदश देश' कविता में लिखा है—

महायातना की चट्टानों से
मैं जकड़ा हुआ प्रमीथस
गरम हृदय का मांस नोचकर
मनुज बाज खा रहे निरंतर
नंगी स्याह पीठ पर उछले हैं
सदियों के निर्मम कोड़े

हम यह मानते हैं कि द्विवेदीयुगीन काव्यधारा में भी राष्ट्रीयता का स्वर प्रबल रूप से था पर माथुर जी की उक्तियों के सदृश्य महादेशीय वहाँ नहीं हैं। इसी प्रकार माथुर जी के काव्य संग्रह 'धूप के धान' संकलित 'नयी भारती' कविता में भी हमें महादेशीय स्वर ही सुनाई पड़ते हैं; उदाहरणार्थ—

एशिया के कमल पर तुम भारती सी
पूर्व के जन जागराग की आरती सी
इस सदी के साथ केसर चरण धरकर
आ गईं तुम भूमि स्वर्ग सँवारती सी
अमृत नदियों का जहाँ है सोम संगम
यह कपूरी लौ उठी उनकी मनोरम
लौट आई देश की ज्यों गंध गरिमा
चन्द्र, तन, नक्षत्र मन, ले ज्ञान संयम

\+ \+ \+

चीन से पाताल तक भूगोल सारा
एक संस्कृति डोर में है बाँध डाला
पूर्व पश्चिम का समन्वय धूप सा है
आत्मा के रूप का सौरभ तुम्हारा
विश्व के रस फूल की तुम नागकेसर
तुम अजंता रेख जनगीता नवीना
पोंछती जाओ धरा के आँसुओं को
हाथ में ले सर्व सुख की रुद्र वीणा

इन उदाहरणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि माथुर जी की उक्तियाँ भारत या भारती सम्बोधित कर लिखी गयी कविताओं से सर्वथा भिन्न हैं और कवि माथुर की राष्ट्रीय भावना में निस्संदेह व्यापकता एवं गहराई है। माथुर जी की अदन पर बम बर्षा और एशिया का जागरण आदि कविताएँ भी इसी कोटि की हैं तथा उनकी 'पन्द्रह अगस्त' नामक कविता भी पन्द्रह अगस्त सम्बन्धी अन्य कविताओं से पृथक् जान पड़ती है। अपनी इस कविता के प्रारंभ में कवि ने देश के रक्षकों से यही आशा की है—

आज जीत की रात
पहरुए, सावधान रहना
खुले देश के द्वार
अचल दीपक समान रहना

कवि माथुर की व्यापक राष्ट्रीय भावना के सदृश्य उनकी सामाजिक विचारधारा में भी नवीनता के दर्शन होते हैं क्योंकि कवि का भावबोध सर्वत्र ही नवीनतम रहा है और उसकी उक्तियाँ यथार्थ के धरातल पर ही आधारित जान पड़ती हैं। यही कारण है कि एक ओर तो इन पंक्तियों में कवि माथुर अपनी व्यक्तिनिष्ठता को ढलते और गलते पाते हैं तथा जिसकी परिणति उन्हें यह बोध कराती है कि वह अपूर्ण और पराजित हो चुके हैं और उनके असंभव स्वप्नों की मिठास उस समस्त वातावरण में मिटती सी प्रतीत होती है—

मैं शुरू हुआ मिटने की सीमा रेखा पर
रोने में था आरम्भ किन्तु गीतों में मेरा अंत हुआ।
मैं एक पूर्णता के पथ का कच्चा निशान
अपनी अपूर्णता में पूरन
मैं एक अधूरी कथा

\+ + +

है अंत हुआ जाता मेरा
इन अंतहीन इतिहासों में
जाने कैसी दूरी पर से
मुझ पर लम्बी छाया पड़ती
किसकी आधी आवाज भरी
मेरे बोझीले गिरते हुए उतारों में
मैं अधिकारी न होने वाली बातों का
मैं अनजाना, मैं हूँ अपूर्ण

दूसरी ओर वह आज तक अपनी जिस अपूर्णता के कारण जीवन की समसामयिकता से पृथक् रहने पर मजबूर किये गये थे, आज उसी अपूर्णता के आधार पर समसामयिकता को देखना, परखना और भोगना चाहते हैं तथा यही अनुभव करते हैं—

यह व्यक्ति और समाज का
उत्तप्त मंथन काल है

संक्रांति की घड़ियाँ बनी हैं शृंखला
बंदी हुई है देह
मन को बाँधने बढ़ते पतन के हाथ हैं
है फेन विष का फैलता ही जा रहा
अब डूबता अंतिम ग्रहण की छाँह में
आलोक हत नक्षत्र मिट्टी से बना
जिसका कि पृथ्वी नाम है ।

इस प्रकार माथुर की कविता में वैयक्तिक असंतोष का अतिरेक नहीं पाया जाता और न हम उनकी उक्तियों को पराजय मूल्यों के संक्रमण से ओत-प्रोत ही पाते हैं बल्कि हमें तो उनकी कविताओं में जीवन को अपनी दृष्टि एवं अपनी बुद्धि के साथ समझने और परखने की भावनाओं का दर्शन भी होता है । साथ ही कवि ने अपनी पंक्तियों में संक्रांति की घड़ियों का उल्लेख कर यह संकेत करना चाहा है कि उनसे उसे यह दृष्टि मिलती है कि जीवन को मात्र पूर्व कल्पित आदर्शों पर बिताया नहीं जा सकता बल्कि उन घड़ियों की संवेदना में क्रियाशील योग देकर ही उस अंधकार को मिटाया जा सकता है जो समस्त धरती को डसने के लिए निरंतर तत्पर जान पड़ता है । अतएव समसामयिकता के इस बोध से उद्भूत अनुभूति हमें यह शक्ति देती है कि हम अपने जीवन का प्रत्येक क्षण उस भावस्थिति को स्वीकार कर जीने का प्रयास करें जो हमें यथार्थ और उसके साथ का दायित्व वहन करने की क्षमता प्रदान कर सके ।

सम्भवतः आधुनिकता एवं समसामयिकता के प्रति विशेष आकर्षण होने के कारण और सामाजिक दायित्व से पूर्ण रचनाओं के निर्माण में रुचि रखने के फलस्वरूप ही कवि माथुर की शृंगारिक कविता 'चूड़ी का टुकड़ा' व्यक्तिगत होते हुए भी उस साधारण जीवन की भावना के अधिक समीप है जो मानव विशिष्टता के स्तर पर मनुष्य मात्र में आस्था रखती है । इसी प्रकार कवि माथुर की प्रसिद्ध कविता 'प्रौढ़ रोमांस' में भी सामाजिक दायित्व की ध्वनि सुनाई पड़ती है और उन्होंने सच्चा विरही उसे माना है जो प्रिय की सुधि को मन में रखकर संघर्षों से खेलता है—

हमको भी है ज्ञान विरह का
और मिलन का
यह मत समझो बरफ़ बन गया हृदय हमारा

× × ×

पर यह तुमसे बहुत भिन्न है
हम मन में सुधि रखकर भी
हैं कर्मशील
हैं संघर्षों में डूबे भूले

× × ×

आज हमारे सम्मुख और समस्याएँ हैं
प्रश्न दूसरे
घर के, बाहर के, समाज के

× × ×

अब हमको सुधि की पीड़ा है नहीं सताती
केवल ध्यान यही आता है
आज न बच्चे घर में हैं कूड़ा करने को
खूब सफाई है आँगन, छत, पर, कमरों में
पर कुछ खाली-खाली सी है
आज नहीं अच्छी लगती यह

× × ×

पहले इस कूड़े करकट से
मन में झुंझलाहट होती थी
आज वही बच्चों का कूड़ा याद आ रहा

निस्संदेह 'सुधि की पीड़ा' का यह रूप विरह भावना के क्षेत्र में कवि माथुर की एकदम मौलिक उद्भावना है और सत्य तो यह है कि माथुर जी की काव्य कृतियों में सर्वत्र ही भावबोध के नये स्वर सुनाई पड़ते हैं लेकिन जीवन से सम्पृक्त, सामाजिक, यथार्थ से सम्पन्न और जीवन की विषमताओं से

संवेदनशील कविताएँ ही उन्होंने प्रचुर मात्रा में लिखी हैं। इस सम्बन्ध में श्रम की धूप, पहिए, आग के फूल और नींव रखने वालों का गीत आदि कविताएँ उल्लेखनीय हैं क्योंकि इनमें कवि मानसिक द्विधाओं और संघर्षों से अधिक महत्व सामाजिक संघर्षों को देता है तथा उसकी यह प्रवृत्ति उसे जन-मानस के अधिक समीप ले जाती है। उदाहरणार्थ—

हमने भी सोचा था, पहले इस जीवन में
सबसे अधिक मूल्य होता कोमल भावों का
पर ठोकर पर ठोकर खाकर हमने जाना
मन के संघर्षों से बाहर के संघर्ष अधिक बोझिल हैं

वास्तव में युग की यथार्थ अभिव्यक्ति का अनुभूतिपूर्ण स्वरूप ही, मुख्यतया माथुर जी की कविताओं में दृष्टिगोचर होता है और 'शिला पंख चमकीले' एवं 'जो बँध नहीं सका' में संकलित कविताओं में भी हमें सामाजिकता के उपकरण प्राप्त होते हैं। यहाँ यह भी स्मरणीय है कि जीवन की महान् विषमताओं के मध्य और निरंतर असफलता के बावजूद कवि माथुर भविष्य के प्रति आस्था रखते हैं। इसीलिए हमने उन्हें मार्क्सवाद से प्रभावित प्रगतिवादी कवियों से पृथक माना है और हम देखते हैं कि कवि माथुर की प्रगतिशीलता उनकी कुछ कविताओं में मानवीयता की उदात्त भावना से सम्पृक्त हो जाती है तथा उनका काव्य स्तर एक उच्चस्तर भूमिका पर प्रतिष्ठित जान पड़ता है। इस दृष्टि से 'शिला पंख चमकीले' की 'व्यक्तित्व का मध्यान्तर' नामक कविता विशेष रूप से उल्लेखनीय है और इस कविता में माथुर जी की मानवीय संवेदना, आस्था एवं आदर्शवाद आदि जीवन-वैषम्य के परिप्रेक्ष्य में अपनी सम्पूर्ण समर्थता के साथ व्यक्त हुए हैं। इसी प्रकार कवि माथुर का यथार्थवादी दृष्टिकोण 'जो बंध नहीं सका' में संकलित 'इतिहास: विकृत सत्य' में भी स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है—

जनता, मानवता, लोकमत
सिर्फ चेहरे हैं
टिकिट की खिड़कियाँ हैं
इतिहास एक खिलौना है

इन झुनझुनों को
दुनिया के हाथों में देना जरूरी है
दुनिया बिना देवता के
कैसे जी सकती है
होती विजय सत्य की
यह पुरानी परिभाषा है
जो विजयी हो जाये
आज वही सत्य है—

उक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि कवि माथुर का अनुभव क्षेत्र निर्विवाद रूप से विस्तृत है और उनकी दृष्टि भी व्यापक है अतः उनकी भावव्यंजना में भी हमें स्वाभाविक ही विविधता के दर्शन होते हैं तथा उनकी उक्तियों में पर्याप्त प्रौढ़ता भी है। यह एक आश्चर्यमिश्रित प्रशंसा की बात ही कही जाएगी कि कवि माथुर की कृतियों में वैयक्तिकता के सरस चित्रण के साथ-साथ सामाजिकता का स्वर भी प्रबल रूप से है और कहीं भी अस्वाभाविकता या असफलता के दर्शन नहीं होते। यही कारण है कि समीक्षक उनके सम्बन्ध में निस्संकोच यह मत प्रकट करते हैं कि 'माथुर जी ने भाव सौंदर्य के नए आयामों का स्पर्श किया है, और हम देखते हैं कि उन्होंने लौकिक रोमांस की भी सर्वथा नवीनतम अभिव्यक्ति की है। यह नवीनता कवि माथुर के सर्वप्रथम कविता संग्रह 'मंजीर' की प्रणय सम्बन्धी कविताओं में ही परिलक्षित होती है ; जैसे—

गंगा के रेत भरे मरु से किनारे पर,
हम तुम मिले थे उस सूनी दुपहरी में।
शिशिर क्षणों की उस मीठी दुपहरी में।
यौवन के भाग्य से
जीवन के अभाग्य से।
तुम थीं छिपाये हुए मोह भरी माया एक
उस श्याम जादू की काली-सी छाया एक।
अपने भोलेपन में।

तुम थीं अजान बड़ी—
सब कुछ समझती थीं फिर भी अजान थीं।'
सुन्दर दुरावमयी,
तुम बड़ी भोली हो।

कवि माथुर की सौन्दर्य भावना भी व्यापक है और अपनी कृतियों में उन्होंने आभ्यंतरिक सौन्दर्य का भावपूर्ण निरूपण करने के साथ-साथ बाह्य सौन्दर्य का भी कलापूर्ण एवं आकर्षक चित्रण किया है। इस प्रकार कवि माथुर की कविताओं में हमें न केवल प्रसंगानुसार रूप सौन्दर्य के लघु-दीर्घ चित्र दीख पड़ते हैं अपितु प्रकृति सौन्दर्य के भी अनेक अनुपम चित्र दृष्टि-गोचर होते हैं। सत्य तो यह है कि प्रकृति के प्रति कवि माथुर को हमेशा प्रेम रहा है और उन्होंने अपनी प्रारम्भिक कविताओं से लेकर सन् १९६८ में प्रकाशित अपने पाँचवें कविता संग्रह 'जो बँध नहीं सका है' में संकलित कविताओं तक में प्राकृतिक दृश्यों की संयोजना की है तथा प्रकृति चित्रण की कई प्रणालियों को सफलतापूर्वक अपनाया भी है। इस प्रसंग में हम यहाँ यह उल्लेख कर देना भी उचित समझते हैं कि माथुर ने कुछ ऐसी कविताएँ भी लिखी है जिनमें केवल वातावरण की प्रधानता है और प्रभावशाली एवं हृदयस्पर्शी वातावरण का चित्रण किया गया है। उदाहरणार्थ; 'कुतुब के खँडहर' कविता की कुछ पंक्तियाँ दर्शनीय हैं—

सेमल की गरमीली हल्की रुई समान
जाड़ों की धूप खिली नीले आसमान में
झाड़ी झुरमुटों से उठे लम्बे मैदान में।
रूखे पतझर झरे जंगल के टीलों पर,
काँप कर चलती समीर हेमन्त की
लम्बी लहर सी।
दूरी के ठिठुरे से भूरे-भूरे पेड़ों पर
ठंडे बबूले बनी धूल छा जाती थी—
रेतीले पैरों से धीरे ही दाबकर
काई से काले पड़े ध्वंस राजमहलों को

पत्थर के ढेर बने मन्दिर मजारों को
जिनसे अब रोज सांझ कुहरा निकलता था
प्यासे सपनों की मँडराती हुई छाँह सा।

माथुर जी की काव्य कृतियों में अभिव्यक्त विविधमुखी एवं उत्कृष्ट भावधारा के उक्त विश्लेषण के पश्चात् जब हम रसयोजना की दृष्टि से कवि माथुर की कविता का मूल्यांकन करना चाहते हैं तो हमारा ध्यान पुनः अपने उस पूर्वकथित वक्तव्य की ओर जाता है कि प्रयोगवादी कवियों की उक्तियों में रस की खोज करना युक्तिसंगत नहीं है। जो कवि परम्परा से विद्रोह कर नवीन प्रयोगों के पक्षपाती रहे हैं उनकी कृतियों में भला शास्त्रीय परिपाटी के रसों का निर्वाह कैसे सम्भव हो सकता है लेकिन इसका अर्थ यह नहीं है कि प्रयोगवादी काव्यधारा सर्वथा रसहीन है और प्रयोगवादी कवियों की कृतियों में रस के उदाहरण ही नहीं मिलते। सत्य तो यह है कि भले ही प्रयोगवादी कवि प्राचीन मान्यताओं के विरोधी रहे हों लेकिन उनकी उक्तियों में प्रसंगानुसार स्वाभाविक ही नव रसों की योजना न्यूनाधिक रूप में अवश्य हुई है और कवि माथुर की कृतियों को भी सर्वथा रसहीन समझना उचित न होगा।

विचारपूर्वक देखा जाय तो माथुर जी की कविता में श्रृंगार, शान्त, अद्भुत एवं वीर आदि रसों की सफल योजना अवश्य हुई है तथा इन रसों के कुछ सुन्दर उदाहरण उनकी कृतियों में मिलते भी हैं। इतना अवश्य है कि अद्भुत रस प्रायः अंगी रस के रूप में ही प्रयुक्त हुआ है और वीर रस के भी सभी प्रकारों का अंकन नहीं हुआ अतः माथुर की कविता में प्रधानता श्रृंगार एवं शान्त रस की मानी जाएगी। यद्यपि श्रृंगार की तुलना में शान्त का प्रयोग अधिक हुआ है पर कवि को अधिक सफलता श्रृंगार रस की अभिव्यक्ति में मिली है और अपनी काव्यधारा के प्रथम चरण से लेकर अंत तक कवि माथुर ने प्रणय सम्बन्धी कविताएँ अवश्य अधिक या न्यून मात्रा में रची हैं तथा इनमें श्रृंगार रस का स्वाभाविक स्रोत प्रवाहित भी होता है। श्रृंगार के भी संयोग और वियोग दोनों ही भेदों का मर्मग्राही चित्रण करते

हुए भी कवि माथुर ने वियोग का वर्णन अधिक मात्रा में किया है और उनके विरह वर्णन में स्वाभाविकता, सरसता, नवीनता एवं अनूठी हृदयस्पर्शिता भी है। यहाँ एक उदाहरण देना असंगत न होगा—

वह चिराग अब नहीं जलेगा
शाम पड़ी है बहुत सामने
बुझी बिदा की ज्योति किन्तु मिलने के जले निशान लिये हूँ।
एक ज्वार में सिमट गया
खोया जो अपनी ही रेतों में
मोती बालू बने उसी सागर का रेगिस्तान लिये हूँ!
राजमहल तो उजड़ गया
पर खंडहर में सपने बाकी हैं।
फूल वहाँ के नहीं किन्तु फूलों जैसा पाषाण लिये हूँ!

माथुर जी की कविता का कलापक्ष और भाषा सौष्ठव

वस्तुतः भाव और विचार पक्ष की भाँति श्री गिरिजाकुमार माथुर के काव्य का कला और शिल्प पक्ष भी सतत विकासशील रहा है क्योंकि काव्य के वस्तुपक्ष की महत्ता स्वीकार करते हुए भी माथुर जी ने उसके शैली एवं शिल्प पक्ष को अधिक महत्व प्रदान किया है। अतएव माथुर जी ने काव्य वस्तु और काव्य शिल्प के सापेक्षिक महत्त्व का निश्चय करते हुए तार सप्तक के वक्तव्य में यही कहा है 'कविता में विषय से अधिक टेकनीक पर ध्यान दिया है। विषय की मौलिकता का पक्षपाती होते हुए भी मेरा विश्वास है कि टेकनीक के अभाव में कविता अधूरी रह जाती है।' इस प्रकार भाव पक्ष की उत्कृष्टता के सदृश्य कवि माथुर की कविता का कलापक्ष भी निर्विवाद रूप से पूर्ण समृद्ध एवं सराहनीय है।

सामान्यतया कवि माथुर प्रयोगवादी काव्यधारा के प्रारम्भिक कवि माने जाते हैं और डा० कैलाश वाजपेयी के शब्दों में 'शिल्प विधि की दृष्टि से प्रयोगवादी काव्य अपने पूर्ववर्ती काव्य की तुलना में अधिक समृद्ध है। छाया-वाद की अपनी विशिष्ट शैली के ही सामने, प्रयोगवाद ने भी प्रगतिशील

कविता के समस्त तत्वों को आत्मसात कर कथन का एक विशेष ढंग अपनाया है जिसे बहुत कुछ अंशों में प्रतीकात्मक शैली की संज्ञा प्रदान की जा सकती है। कथन का यह ढग नवीन होने के कारण ही काव्य के रूप तत्व पर अधिक बल देता है। इसीलिए इस धारा विशेष की रचनाओं में प्रतीकों और बिम्बों का प्रयोग अधिक विस्तृत और वैविध्यपूर्ण ढग पर मिलता है।' इस प्रकार माथुर जी की कविता में भी उक्त कलागत विशेषताओं के निखरे हुए रूप में दर्शन होते हैं।

प्राय: विचारक काव्यशिल्प के भाषा, अलंकार, बिम्ब विधान, प्रतीक योजना एवं छन्द आदि प्रमुख अग मानते है पर इन सबमे भाषा को ही सर्वोपरि महत्व प्रदान किया जाता है और किसी भी कवि की कलागत विशेषताओं का विश्लेषणात्मक परिचय देते समय सर्वप्रथम उसके भाषा सौष्ठव का ही मूल्यांकन किया जाता है अत: हम भी यहाँ कवि माथुर की काव्यभाषा का विवेचन सबसे पहले करेंगे। इस सम्बन्ध मे यह भी ध्यान में रखना उचित होगा कि प्रयोगवादी काव्यधारा के प्रवर्तक अज्ञेय ने बहुचर्चित कृति 'तार सप्तक' के वक्तव्य में लिखा है 'यह आज के कवि की सबसे बड़ी समस्या है कवि अनुभव करता है कि भाषा का पुराना व्यापकत्व उसमें नहीं है— शब्दों के साधारण अर्थ से बड़ा अर्थ हम उसमें भरना चाहते है, पर उस बड़े अर्थ को पाठक के मन मे उतार देने के साधन अपर्याप्त हैं। वह या तो अर्थ कम पाता है या कुछ भिन्न होता है।' इसी प्रकार अज्ञेय जी ने 'आत्मनेपद' में भी यही कहा है 'मैं उन व्यक्तियों मे से हूँ—और ऐसे व्यक्तियों की संख्या शायद दिन प्रतिदिन घटती जा रही है—जो भाषा का सम्मान करता है और अच्छी भाषा को अपने आप में एक सिद्धि मानते हैं।'

इससे यह अनुमान तो सहज ही लग जाता कि प्रयोगवादी काव्यधारा या नयी कविता में भाषा का महत्व अवश्य स्वीकार किया गया और हमारे प्रयोगवादी कवि भी भाषा की रचना प्रक्रिया से भलीभाँति परिचित रहे हैं। इस प्रकार काव्य भाषा के सम्बन्ध में कवि माथुर की जागरूकता वैचारिक एवं रचनात्मक दोनों स्तरों पर दिखाई देती है और उन्होंने स्वयं ही 'तारसप्तक'

के वक्तव्य में यह लिखा है 'रोमानी कविताओं में मैंने छोटी और मीठी ध्वनि वाले बोलचाल के शब्द प्रयुक्त किये हैं। रोमानी कविताएँ मैं हिन्दुस्तानी भाषा में ही लिखना पसंद करता हूँ। क्लासिकल कविताओं में आर्य गुण लाने के के लिए बड़ी लम्बी और गम्भीर ध्वनि वाले शब्द रखे हैं। अभिव्यंजनात्मक शब्द विन्यास वातावरण के रूप भाव के अनुकूल नये बनाये हैं—जैसे पतला नभ, सिमटी किरन, आदिम छाँहें, घूमते स्वर आदि। क्योंकि मैं व्यंजना को वातावरण के लघु चित्र अथवा प्रतीक का रूप दे देता हूँ। कहीं-कहीं नये शब्द वातावरण का ध्वनि भाव लेकर बनाये हैं, जैसे सूनसान, खँडेरों आदि। उदाहरणार्थ सूनसान शब्द लीजिए। शून्यता सूनापन, सूनसान सभी शब्द उस ध्वनि भाव के साथ निर्बल प्रतीत हुए। शून्य में एक खोखलापन है, सूनापन में दो स्वर ध्वनियों की तेजी के बाद ही अंत की व्यंजन ध्वनियाँ गति को समाप्त कर देती हैं, रोक देती हैं। सूनसान सबसे निर्बल है, क्योंकि इसमें केवल एक स्वर ध्वनि है और आरम्भ की दो व्यंजन ध्वनियों से शब्द निर्गति है। सूनसान शब्द में 'ऊ' की ध्वनि लम्बाई और दूरी व्यक्त करती है, आ की ध्वनि विस्तार। बीच में 'न' की ध्वनि सनसनाहट और गहराई व्यक्त करती है। इस प्रकार सूनसान शब्द का ध्वनि भाव 'आं ऊँ' हो जाता है जो गहरे सूनसान का यथार्थ रूप है। इसी प्रकार अन्य शब्द भी हैं। विस्तार के कारण प्रत्येक नये शब्द का अर्थ नहीं दे सकता।' इससे स्पष्ट हो जाता है कि कवि माथुर हमारे समक्ष एक कुशल शब्द शिल्पी के रूप में आते हैं और उनकी भाषा में निजता स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती है।

सामान्यतया माथुर जी की कविता में भाषा शैली का विकसनशील रूप ही दीख पड़ता है और यह उनकी कृतियों के अनुशीलन से स्पष्ट भी हो जाता है। यहाँ यह स्मरणीय है कि कवि माथुर ने अपने कवि जीवन का आरम्भ ब्रजभाषा में काव्य-रचना से किया था और उन्होंने लगभग नौ वर्ष की आयु में ही न केवल सभी प्रमुख रीतिकालीन कवियों का अध्ययन पूर्ण कर लिया था अपितु बाल्यकाल में ही संस्कृत ग्रंथों एवं उपनिषदों के अनुशीलन ने उनकी भाषा को संस्कृत की तत्सम शब्दावली से पूर्ण भी कर दिया। इसी

प्रकार वह जब इंटरमीडिएट के विद्यार्थी थे तब उन्होंने श्री मैथिलीशरण गुप्त और छायावादी कवियों की कृतियों का भी अध्ययन अनुशीलन किया। इनमें से यदि महादेवी की भावानुभूति से वह प्रभावित हुए तो निराला की भाषा-शैली ने उनके काव्य शिल्प को प्रभावित किया और समीक्षक यही कहते हैं, 'गीतों में उनकी (निराला की) अनुभूति की गहनता से उद्भूत ध्वनि जिस प्रकार अकस्मात पाठक के हृदय को छू लेने की सामर्थ्य रखती है, उसी प्रकार उनकी घनत्वपूर्ण शब्द योजना भी उनके गीतों को नई तरह के शिल्प से मूर्त करने में सफल हुई है।····इस समय तक (माथुर जी) अँग्रेजी कवि मिल्टन और विशेष रूप से कीट्स का अध्ययन कर चुके थे और उदात्त शैली का प्रभाव उनके मन में रम चुका था। यहीं से उनकी लम्बी, गंभीर और उदात्त शैली में लिखी रचनाओं का बीज पड़ा है।····आज उनकी रचनाओं में छन्दों एवं शब्द शिल्प सम्बन्धी प्रयोगों के जो नये नये प्रतिमान देखने को मिलते हैं, उनके वैविध्यपूर्ण संस्कार उन्हें आरम्भिक जीवन से ही मिलते चले गये। यहाँ यह भी स्मरणीय है कि सन् १९३७ से ही कवि माथुर ने भाषा की दृष्टि से छायावादी प्रवृत्तियों का विरोध कर स्वयं को नवीन धरातल पर प्रतिष्ठित करने का संकल्प किया—

आज मेरे स्वर बनेंगे,
सत्य के सदेशवाहक
आज मेरे गीत होंगे,
जागरण के रागिनी के।

इस प्रकार सन् १९३७ से ही कवि माथुर की काव्य भाषा में क्रमबद्ध परिवर्तन लक्षित होने लगा था और हम इस तथ्य से सहमत नहीं हैं कि माथुर जी की भाषा से क्रमबद्ध परिवर्तन १९४१ से लक्षित होता है क्योंकि सन् १९४१ में उनका 'मंजीर' नामक प्रथम काव्य संग्रह प्रकाशित हुआ और यहाँ यह स्मरणीय है कि 'मंजीर' में कवि माथुर की सन् १९३५ से १९४० तक की प्रतिनिधि कवितायें संकलित हैं। इस काव्य संग्रह को कवि के किशोर मन का स्वप्न चित्र कहा जाता है और यही कारण है कि मंजीर में संकलित कविताओं की भाषा भाव पेशल अधिक है तथा तत्सम प्रधान शब्दावली की

अधिकता तथा भावना को स्पर्श करने वाले कोमल शब्द चित्रों का बाहुल्य है। जैसे—

अर्धरात्रि की बोझल घड़ियाँ,
अलस चाँदनी यह बिखरी-सी।
कहीं दूर गंगा के तट पर
फैलीं सुधि किरणें निखरी-सी
लहरों में बहते-उतराते।
बीती बातों के ध्रुव तारे,
अब तक सुधि में रेत वहाँ की
लगती मृदु पदचिन्ह भरी-सी।
खिच जातीं तसवीरें तब—
अपने नयनों के मूक मिलन की।

मंजीर में संकलित कविताओं में तत्सम शब्दों की अधिकता होते हुए भी भावात्मकता का प्राधान्य है और क्लिष्टता कहीं भी नहीं है। सम्भवत: कवि का लक्ष्य यही रहा है कि भाषा कवि की संवेदना की कुशल वाहिका हो और इसी में उसकी सर्वोत्कृष्ट सफलता भी है। इसीलिए 'मंजीर' में भावानुकूल शब्द चयन भी दृष्टिगोचर होता है, जैसे—

रुंधी हुई छाती सा गहरा,
सुप्त निशा का सूनापन है।
गरम मोम सा घुलता जीवन
मरते ओले जैसा मन है।

पाँच वर्ष पश्चात सन् १९४६ में प्रकाशित माथुर जी के द्वितीय काव्य संग्रह 'नाश और निर्माण' की कविताएँ स्पष्ट रूप से कवि की दोहरी मन:स्थिति की द्योतक हैं तथा यह दोहरी स्थिति है—वियोग जन्य निराशा की और विगत को विस्मरण कर वर्तमान एवं भविष्य को अपने पौरुष के बल पर इच्छानुसार रूप प्रदान करने की। इस दोहरी मन:स्थिति के कारण ही इस काव्य संग्रह में संकलित कविताओं में मनोविज्ञानपरक भाव खंडों के निर्माण करने वाली भाषा की अधिकता है और कवि ने शब्द प्रयोग में पूरी सतर्कता

रखकर अपनी काव्य भाषा में छायावादी तरलता के स्थान पर स्थूलता लाने में सफलता प्राप्त की है। अपने कथन की पुष्टि में हम अधिक उदाहरण न देकर केवल निम्नांकित पंक्तियाँ उद्धृत कर रहे हैं और इनसे स्पष्ट हो जाता है कि माथुर जी की अभिव्यंजना शैली में किस प्रकार अंतर आ गया है तथा अब मनोवैज्ञानिक अभिव्यक्ति के कारण शब्द योजना में भी पहले की अपेक्षा पर्याप्त अंतर है—

प्रथम मिलन के उस ठंडे कमरे में
छत के वातायन से,
नींद भरी मंदी-सी एक किरन भी,
थक कर लौट लौट जाती थी।
आलस भरे अँधेरे में,
दो काली आँखों सी चमकीली,
एक रेडियम घड़ी सुप्त कोने में चलती,
सूनेपन के हल्के स्वर-सो।

सन् १६५५ में प्रकाशित कवि माथुर का तृतीय काव्य संग्रह 'धूप के धान' प्रयोगवादी काव्यधारा की एक महत्वपूर्ण उपलब्धि कहा जाता है पर काव्य कृति की भाषापरक उपलब्धि भी निस्संदेह उल्लेखनीय है और समीक्षक यही कहते हैं 'शिल्प की दृष्टि से 'धूप के धान' की रचनाएँ और भी सशक्त हैं—बिम्बों के ऐसे अनेक प्रकार जो अब हिन्दी कविता में पहले कभी प्रयुक्त न हुए थे, पहली बार इस संग्रह की रचनाओं के माध्यम से हिन्दी कविता में आए।' सत्य तो यह है कि 'धूप के धान' में संकलित कविताओं की उल्लेखनीय शिल्पगत उपलब्धियों का श्रेय कवि माथुर की शब्द योजना को ही है और देखते हैं कि इस काव्य कृति में प्रयुक्त शब्दावली अपने साधारण अर्थ के साथ ही विशेष अर्थों को भी सफलतापूर्वक वहन करने में समर्थ है। यहाँ कुछ उदाहरण देना असंगत न होगा—

उभरे रोएँ छुवा गई है चाँदनी
सींग नुकीले चुभा गई है चाँदनी
चंचल नयनी गोरी हिरनी चाँदनी

और भी-

समय आगे बढ़ा जाता
समय पीछे रहा जाता
समय का मान मिट जाता
केवल दीखती मायावती की छाँह
गोरे नाग के फन सी

छह वर्ष पश्चात सन् १९६१ में प्रकाशित चतुर्थ काव्य संग्रह 'शिला पंख चमकीले' में कवि माथुर की काव्य भाषा ने निस्संदेह एक नवीन मोड़ लिया है और इस काव्य संग्रह में संकलित कविताओं का अनुशीलन करने पर सहज ही स्पष्ट हो जाता है कि भाषा में बाह्य साज-सज्जा के प्रयास का सर्वथा अभाव है तथा कवि अब भाषा के बाह्य आवरण की अपेक्षा उसकी संवेदना शक्ति की ओर अधिकाधिक आकर्षित हो रहा है। यही कारण है कि 'शिला पंख चमकीले' में संगृहीत कविताओं की भाषा उत्तरोत्तर सरल होती गई है लेकिन वह महान अभिव्यक्ति को सफलतापूर्वक वहन करने में सक्षम है। उदाहरणार्थ—

ईंट लाल होती ज्यों
आँवे में तपने से
मूर्त्ति यह पकेगी
संघर्ष में झुलसने से
निखरेगा अंतरंग
आब नई आएगी
कच्चा मन थिर होगा
आँचों में तपने से

यह काव्य संग्रह नये शब्द प्रयोग की दृष्टि से भी उल्लेखनीय है और इस 'शिला पंख चमकीले' में प्रारम्भ में प्रकाशक की ओर से कहा गया है कि 'प्रस्तुत संग्रह की रचनाओं में कवि ने अपनी पिछली कृतियों की परम्परा को अक्षुण्णा रखते हुए ऐसी शब्दावली दी है जिसमें कुछ तो नए रचे हुए सामासिक शब्द और विशेषण हैं अथवा ऐसे शब्द भी हैं जो कविता के क्षेत्र में प्रथम

बार प्रयुक्त किए गये हैं। आधुनिक काव्य भाषा को विस्तृत और समृद्ध करने में कवि के शब्द प्रयोगों का विशिष्ट योगदान रहा है अतः उनकी एक संक्षिप्त सूची यहां दी जा रही है—

(१) अलोप [देशज प्रयोग। 'लोप' के अर्थ में]
(२) संतिए
(३) घूरी सांझ [देशज प्रयोग। सई सांझ के अर्थ में]
(४) फरिया [कन्याओं की छोटी ओढ़नी]
(५) लुगड़ा [मालवे की छापेदार ओढ़नी]
(६) बीजरी
(७) रूंद [घास भरे मैदान या चरागाह]
(८) बोर [शीश का आभूषण टीका]
(९) कजलते
(१०) कांवर [कहारों की बहँगी]
(११) बेहरा [घड़ों की एक पर एक रखी पांत जो पनिहारिनें सिर पर धर कर ले जाती हैं।]
(१२) महूक [शहद का छत्ता]
(१३) दाभ [दूर्वादल]
(१४) आंसें [नरम अंकुर]
(१५) खरैरी [खुरदुरी, आसमान]
(१६ समई [लकड़ी की दीवट]
(१७) चकमक [इस्पात का एक चिकना टुकड़ा जिसके छोटे पत्थर पर चोट देकर गांववाले आग निकालते हैं]
(१८) मागर [एक किस्म का सफेद चिकना पत्थर]
(१९) संख [एकदम सूखा हुआ। सत्वहीन अर्थ में भी प्रयुक्त]
(२०) सनोरी [पटसन के सूखे डंठल जिन्हें जलाकर उजेला किया जाता है]

(२१) तूपे	[स्तूप]
(२२) अगर	[कालागरू]
(२३) टगर	[सूखे जंगली मैदान]
(२४) निसई	[विशाल मंदिरों के ऊँचे छुच्जेदार शिखर]
(२५) धाड़ें	[रोदन, चीत्कार]
(२६) सुन्न	[स्तब्ध, सुनसान विशेष रूप से अलौकिक (सुपर नेचरल) वातावरण संकेत में प्रयुक्त किया जाता है।]
(२७) पुरिया	[मिट्टी का छोटा ढक्कन]
(२८) वैसन्दर	[यज्ञ की अग्नि : वैश्वानर]
(२९) जलबीज	
(३०) नागछत्र	[अणु विस्फोट का फंगस रूप धूम्र बादल]
(३१) ज्वलन	
(३२) उच्छिष्ट-उजेला	
(३३) स्पर्शमरी	[मौथेर के अधिक डेलीकेट शेड के रूप में]
(३४) त्वचासुखी	
(३५) पंक्तिचालन	[रेजीमेन्टेशन के रूप में]
(३६) फटा भय	
(३७) अंतिमांत	[आत्यंतिक के अर्थ में]
(३८) हहरी	[खिलौने के घर]
(३९) गोफन	
(४०) पेचरोल	[पेच (हिन्दी) रील (अंग्रेजी) शब्दों को मिलाकर नया शब्द। लिपटे हुए हुक्के के अर्थ में।]
(४१) झुरे	[झुराना : पेड़ों के पत्तों या फलों को

ढेले मारकर अथवा डंडे से झराना]

(४२) चन्द्रलट

(४३) समूम [अत्यन्त गर्म रेगिस्तानी हवाएँ]

(४४) हम्मदा [पथरीली रेगिस्तान]

(४६) व्योमफाड़

(४७) सुनैली [सुनहरी]

सन् १६६८ में कवि माथुर का पाँचवा काव्य संग्रह 'जो बँध नहीं सका' प्रकाशित हुआ और इसमें संकलित कविताओं में से कुछ में ही तत्सम शब्दावली के दर्शन होते हैं अन्यथा अधिकांश कविताएँ अत्यन्त साधारण बोलचाल की भाषा में ही रखी गयी हैं। इतना अवश्य है कि भाषा सरल होते हुए भी कवि के भाव को उपयुक्त बिम्बों द्वारा अधिक स्पष्ट बनाने में सक्रिय रही है और उसमें अनूठी प्रभविष्णुता एवं सरसता है। एक उदाहरण दर्शनीय है—

हरियाली
और भी हरी हो गई
हवा ठंडी
लिपट लिपट बहती रही
काँटे संयोग या
मीठे चुभते रहे
बेल
रो आँ हँसी

उक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि माथुर की काव्यकृतियों में भाषा के विविध रूप दीख पड़ते हैं और इसमें कोई सन्देह नहीं कि माथुर जी एक सफल शब्दशिल्पी भी हैं। यद्यपि उन्होंने संस्कृत शब्दावली को विशेष रूप से अपनाया है पर उनकी काव्य कृतियों में अँग्रेजी, उर्दू आदि भाषाओं के शब्द भी पृथुल परिमाण में प्रयुक्त हुए हैं। इसी प्रकार कवि माथुर की रचनाओं में ऐसे स्थल बहुत कम हैं जहाँ शब्दों को विकृत किया गया है अन्यथा हमें उनकी कृतियों में सर्वत्र ही भावानुकूल, सरस एवं सशक्त शब्दावली के

ही दर्शन होते हैं और उनकी भाषा को निर्विवाद रूप से आदर्श भाषा कहा जा सकता है तथा उसमें अर्थ सौन्दर्य के साथ-साथ नाद सौन्दर्य का अपूर्व मिश्रण है। डा० नगेन्द्र के शब्दों में 'भाषा को नवीन कथ्य के अनुरूप ढालने के प्रयत्न सभी नये कवियों ने किए हैं—गिरिजाकुमार ने तद्भव तथा देशज शब्दों के प्रयोग, अंग्रेजी के अनेक सचित्र शब्दों के अन्तर्भाव, बिम्बात्मक नवीन शब्दों के निर्माण आदि के द्वारा आधुनिक काव्यभाषा के विकास में महत्वपूर्ण योगदान किया है। भाषा के इन नव्य प्रयोगों में केवल विलक्षणता की चाह नहीं है और न नया अर्थ भरने का तर्कहीन प्रयास है; अधिकांश प्रयोगों के पीछे एक कलात्मक तर्क विद्यमान है। उदाहरण के लिए चंदिरा (चंद्रिका, चंदरिमा (चन्द्रमा की आभा, भूमानी (पृथ्वी की आभा), छुअन (स्पर्श, मेघिमा (मेघों की आभा), मटीली (मिट्टी के रंग की), गरमीली (ऊष्मायुक्त), ऊनी (न्यू) आदि को लिया जा सकता है। यह भाषा छायावाद के काव्य संस्कारों को लेकर नवीन जीवन की अनुभूतियों को मूर्तित करने का प्रयास कर रही है—काव्य परम्परा से उच्छिन्न होकर नवीन रूप गढ़ने के ऐसे अनर्गल प्रयत्न नहीं कर रही जिनसे भाषा को अर्थव्यक्ति ही नष्ट हो जाए। कहने की आवश्यकता नहीं कि अभी यह भाषा अपनी उचित निर्मित को प्राप्त नहीं कर सकी, किन्तु उसमें तो समय लगेगा। हमें तो यह देखना है कि विकास की यह दिशा सही है या नहीं। सामान्य व्यवहार की भाषा को काव्य रूप देने की प्रक्रिया अत्यन्त कठिन है—उसके लिए अर्थ सौन्दर्य तथा नाद सौन्दर्य की असाधारण पहचान आवश्यक होती है—हमारी धारणा है कि नये कवियों में गिरिजाकुमार में वह क्षमता औरों से अधिक है।'

कवि माथुर का प्रतीक विधान—

वस्तुतः प्रतीक शब्द के कई अर्थ माने जाते हैं और शब्द मात्र ही प्रतीक हैं तथा भाषा का प्रयोग भी प्रतीकात्मक है लेकिन साहित्य जगत में प्रतीक कुछ विशिष्ट अर्थ रखता है। गार्डीनर A. M. Gardiner) ने Speech and Language में हमारा ध्यान इस ओर आकृष्ट किया है कि ध्वनिव्यंजक शब्द ही सरलता से प्रतीक पद पर प्रतिष्ठित हो जाते हैं।

इस प्रकार जब किसी शब्द के प्रचलित अभिधेय अर्थ को ग्रहण करते हुए भी उसके द्वारा किसी अन्य अर्थ की सूचना दी जाय तब उसे प्रतीक कहा जाता है। उदाहरणार्थ; सिंह, साहस और शौर्य का, सांप क्रूरता और कुटिलता का तथा भेड़ कायरता और भीरुता का प्रतीक माना जाता है।

यहाँ यह प्रश्न स्वाभाविक ही उठता है कि प्रतीकों का काव्य या साहित्य में क्यों प्रयोग किया जाता है और इस प्रश्न का उत्तर देते हुए कहा जा सकता है कि प्रतीक जीवन में व्यवहार के लिए अत्यन्त आवश्यक है। वतुत: मनुष्य मात्र का स्वभाव है कि वह अपने भाव के अतिरेक को बाहर प्रकट करने के लिए लालायित रहता है। हमारे चेतन के भीतर जो उथल-पुथल होती है वही बाहर हमारे संकेतों 'प्रतीकों' में प्रकट होती रहती है। कहा जाता है कि वस्तु जीवन का समग्र प्रत्यक्ष पक्ष हमारे अन्तजर्गत का प्रतीक है और प्रतीक के ही सहारे मनुष्य ज्ञात अथवा अज्ञात अवस्था में जीवित रहता है, काम करता है तथा अपने अस्तित्व को बनाये रखता है।' इस प्रकार प्रतीक जीवनव्यापी हैं और विचारपूर्वक देखा जाय तो हमारे संपूर्ण जीवन की प्रक्रिया की शैली प्रतीकात्मक है अत: साहित्य या काव्य में भी प्रतीकात्मक शैली का प्रयोग स्वाभाविक ही कहा जाएगा।

विभिन्न पाश्चात्य और भारतीय विद्वानों ने प्रतीकों को विविध वर्गों में विभाजित करने का प्रयास किया है। इस प्रकार ईट्स (W.C. yeats) ने प्रतीक ध्वनि प्रतीक एवं विचारमूलक प्रतीक नामक दो भेद किए हैं और सी० एम० बावरा ने प्रतीक को शब्द प्रतीक, वाक्य प्रतीक एवं प्रबंध प्रतीक नामक तीन वर्गों में विभाजित किया है तथा (W. M. Urban) ने प्रतीक के निम्नलिखित प्रकार माने हैं—१. परम्परामुक्त या स्वच्छन्द (Extrinsic Arbitrary Symbols ; २. वास्तविक या व्याख्यापरक (Intrinsic Arbitrary Symbols) और अन्तंदृष्टि प्रतीक (Insight Symbols)। इसी प्रकार हमारे हिन्दी समीक्षकों ने भी प्रतीक का वर्गीकरण किया है और आचार्य रामचन्द्र शुक्ल तथा श्री लक्ष्मीनारायण सिंह 'सुधांशु' ने प्रतीक के भावोत्पादक प्रतीक और विचारोत्पादक प्रतीक

नामक दो भेद किए हैं पर डा० प्रेमनारायण शुक्ल प्रतीक के परम्परागत प्रतीक, देशगत प्रतीक, व्यक्तिगत प्रतीक एवं युगगत प्रतीक नामक चार प्रकार मानने के पक्ष में हैं। हमारी दृष्टि में प्रतीक के सांस्कृतिक प्रकृत एवं सैद्धान्तिक नामक तीन वर्ग मानना ही उचित होगा।

विचारपूर्वक देखा जाय तो वैदिक साहित्य में ही प्रतीकात्मकता के दर्शन होते हैं और सस्कृत साहित्य के विशाल भण्डार में प्रतीकों का पूर्ण प्रसार दिखाई पड़ता है तथा हमारे प्राचीन एवं मध्यकालीन हिन्दी काव्य में भी प्रतीकों का प्रयोग हुआ है। इसी प्रकार भारतेन्दु एवं द्विवेदी युग में भी कवियों ने प्रतीक योजना की ओर ध्यान दिया है और छायावादी कविता की प्रमुख विशेषता प्रतीकात्मकता ही मानी जाती है पर प्रयोगवादी काव्यधारा या नई कविता में न केवल विपुल मात्रा में प्रतीकों का प्रयोग हुआ है अपितु पाश्चात्य साहित्य से प्रभावित हो हमारे प्रयोगवादी कवियों ने सर्वथा नवीन प्रतीकों का प्रयोग किया है। सत्य तो यह है कि प्रयोगवादी कवियों में प्रतीकों की नवीन खोज के प्रति विशेष अनुराग है और उन्हें अब तक हिन्दी साहित्य में प्रयुक्त होनेवाले उपमान तथा रूढ़िबद्ध ही नहीं अस्वस्थ लगते हैं अतः नवीन उपमानों को जन्म देना उन्होंने अपना कर्तव्य माना है।

इस प्रकार प्रसिद्ध प्रयोगवादी कवि अज्ञेय ने मानव के वर्तमान जीवन में यौन वर्जनाओं की स्थिति देखकर प्रयोगवादी काव्य में सजातीय प्रतीकों को आवश्यक और उपयोगी मानते हुए कहा है 'आधुनिक युग का साधारण व्यक्ति यौन वर्जनाओं का पुंज है।····आज के मानव का मन यौन परि-कल्पनाओं से लदा हुआ है और वे कल्पनाएँ सब दमित और कुंठित हैं। उसकी सौन्दर्य चेतना भी उससे आक्रान्त है। उसके उपमान सब यौन प्रती-कार्थ रखते हैं।' इसी प्रकार श्री गिरिजाकुमार माथुर ने भी 'धूप के धान' की भूमिका में यह संकेत किया है कि नयी कविता में 'जीवन का छोटे से छोटा पक्ष, साधारण से साधारण विषय अब काव्य की गरिमा के अयोग्य नहीं रहा। साधे जमे और एक परिचित दायरे में घूमनेवाले प्रतीक उपमानों के स्थान पर वस्तु जगत् के समस्त क्रियाकलापों को उसने अपनी वर्द्धमान

उँगलियों से छूकर उन्हें ग्रहण किया। मानसिक जगत की अनेक सूक्ष्म प्रक्रियाओं के पर्दे उठाये हैं। दैनिक जीवन की सैकड़ों छोटी-छोटी घटनाओं के वातावरण और प्रतीकों से काव्य-शिल्प को समृद्धिशाली किया है।'

इससे स्पष्ट हो जाता है कि प्रयोग काव्यधारा या नयी कविता में प्रतीकात्मक शैली विशेष रूप से प्रयुक्त हुई है और इस धारा विशेष की रचनाओं में प्रतीकों का प्रयोग अधिक विस्तृत और वैविध्यपूर्ण ढंग पर मिलता है। इस प्रकार श्री गिरिजाकुमार माथुर की कृतियों में भी प्रतीकों का प्रयोग प्रचुर मात्रा में हुआ है और श्री गिरिजाकुमार माथुर जी ने काव्य जगत में प्रयुक्त होनेवाले उपर्युक्त तीन प्रकार के प्रतीकों का प्रयोग निर्विवाद रूप के सफलतापूर्वक किया है। इस कथन की पुष्टि में हम यहाँ कुछ उदाहरण देना आवश्यक समझते हैं।

सांस्कृतिक वर्ग के प्रतीकों को परम्परागत प्रतीक भी कहा जाता है और इस वर्ग के प्रतीकों के अन्तर्गत धार्मिक, ऐतिहासिक एवं पौराणिक सभी प्रकार के प्रतीक आ जाते हैं। इस प्रकार निम्नांकित पंक्तियों में कवि ने वरदान, मंदिर, पूजन आदि शब्दों का प्रयोग अपनी भावना की पवित्रता और कष्ट सहन क्षमता का परिचय देने के उद्देश्य से किया है—

रूठ गये वरदान सभी फिर भी मैं मीठे गान लिये हूँ,
टूट गया मन्दिर तो क्या पूजन के अरमान लिये हूँ।

इन पंक्तियों में कवि ने प्रतीकों के प्रयोग द्वारा न केवल अपने कथन एवं अडिग साधना को कुछ शब्दों में ही व्यक्त किया है बल्कि एक भव्य एवं गम्भीर वातावरण का निर्माण भी किया है। इसी प्रकार निम्नांकित पक्तियों में कवि ने अतीत की मधुर स्मृति को व्यक्त करने के लिए गंगा तट के ध्रुवतारे आदि शब्दों का प्रयोग किया है—

कहीं दूर गंगा के तट पर
फैली सुधि किरणें निखरी-सी
लहरों में बहते उतराते।
बीती बातों के ध्रुवतारे।

वस्तुतः कवि ने यहाँ 'ध्रुवतारे' शब्द का प्रयोग कर अतीत की मधुर बातों की अविस्मरणीय प्रभाव के अत्यन्त कम शब्दों में प्रकट करने में सफलता प्राप्त की है और निम्न पंक्तियों में कवि अवचेतन में दबी मधुर स्मृतियों के उभार को 'पूजन की झाँझ' कहता है—

> कहीं बहुत ही दूर उनींदी
> झाँझ बज रही है पूजन की।

इसी प्रकार निम्नलिखित अवतरण में कवि ने नाश, शाप और वरदान आदि शब्दों का प्रयोग भावों की तीव्रता को अधिक सबल बनाने के उद्देश्य किया है—

> नाश का तुम शाप या वरदान दे दो
> आज मेरे पूजनों के गान ले लो
> छल किया था आरती मैंने सजाकर
> जीत समझी हार के दीपक जलाकर

कहीं-कहीं कवि ने पौराणिक पात्रों के नामोल्लेख द्वारा विशेष भव्य वातावरण का निर्माण किया है और इन पंक्तियों में वन प्रदेश की उदासी तथा समृद्धि में भी अभाव का जितना सशक्त चित्रण नल दमयन्ती के नामोल्लेख द्वारा हुआ है उतना कई पंक्तियों द्वारा नहीं हो पाता—

> बीच सूने में
> बनैले ताल का फैला अतल जल
> थे कभी आये यहाँ पर
> छोड़ दमयन्ती दुखी नल।

इसी प्रकार माथुर जी ने ऐतिहासिक प्रतीकों की संयोजना में कहीं-कहीं इतिहास के किसी विशिष्ट काल की प्रसिद्ध वस्तु विशेष का नाम लेकर अर्थ की व्यंजना की है, जैसे—

> लाल कोहेनूर गिरते मृत्तिका में
> उलटते हैं एक क्षण में तख्त ताउसी हजारों

उक्त उदाहरण में 'कोहेनूर' और 'तख्त ताऊस' किसी एक काल

विशेष के वैभव को स्पष्ट न कर सार्वकालिक और सार्वदेशीय वैभव के अन्ततः विनाश की बात स्पष्ट कर रहे हैं।

सामान्यतया प्रयोगवादी कवियों ने सौन्दर्य चित्रण, रूप योजना और नयी कल्पनाओं के आयोजन में प्रकृति वर्ग के प्रतीकों का ही प्रयोग किया है और ये सभी प्रतीक बहुधा दमित काम वासना तथा प्रकृतवादी सौन्दर्य चित्रण की अभिव्यक्ति के अर्थ में प्रयुक्त हुए हैं। हम यहाँ यह भी स्पष्ट कर देना उचित समझते हैं कि कतिपय समीक्षकों ने प्रकृत प्रतीकों को व्यक्तिगत प्रतीक और प्राकृतिक प्रतीक नामक दो भेदों में विभाजित किया है और उनका कहना है कि कविगण अपनी मनोभावनाएँ व्यक्त करने के लिए बहुधा प्राकृतिक प्रतीकों का सहारा लेते हैं। उदाहरणार्थ; निम्न-लिखित पंक्तियों में कवि अपनी व्याकुलता को स्पष्ट रूप से न कहकर प्राकृतिक उपादानों का सहारा लेकर व्यक्त करता है—

ज्वर सा ढगा हुआ यह वन है
रुकती गिरती दबी पवन है
रुँधी हुई छाती - सा गहरा,
सुप्त निशा का सूनापन है।

इसी प्रकार कवि ने मिलन के क्षणों का वर्णन करते समय यह संकेत किया है कि प्रकृति में भी सर्वत्र उल्लास छाया है—

सखी लगता है ऐसा आज
रोज से जल्दी हुआ प्रभात
छिप न पाया पूनो का चाँद
अभी तो झूम रही है रात।

माथुर जी ने अपनी उक्तियों में जड़तामय वातावरण की सृष्टि के लिए भी तदनुरूप प्रकृति का गतिहीन रूप अंकित करते हैं और व्यक्तियों की थकान भरी मनोवृत्ति को स्पष्ट करने के लिए भी प्राकृतिक उपादानों का सहारा लेते हैं; जैसे—

दिन भर थक कर दफ्तर ही में सूरज डूबा,
अल्मारियों, दरवाजों में सोया उजियाला

गोधूली हो गई धूल से ढकी फाइलों के पन्नों पर
कब्रों-सा सुनसान समाया

प्राकृतिक प्रतीकों के सदृश्य व्यक्तिगत प्रतीकों का भी माथुर जी की कविता में प्रयोग हुआ है और निम्नलिखित पंक्तियों में पूनो, तारे आदि प्राकृतिक उपादान मूलतः कवि की वैयक्तिक भावनाओं के ही प्रतीक हैं तथा उनके द्वारा कवि ने अपने व्यक्तिगत नैराश्य की भावना ही प्रकट की है—

पूनो निकल गई सूनी
तारे हैं अभी और मिटने को।

इसी प्रकार इन पंक्तियों में उपवन, आँसू सपनों और प्रथम दूज शब्द आदि कवि के वैयक्तिक भावनाओं के सशक्त वाहक बनकर आये हैं—

आँखों के नीले उपवन में
आँसू सागर के लघु तट पर।
आ जाती तुम प्राण सदा ही
चल मेरे सपनों के पथ पर।
रानी तुम बनकर आयी थीं
प्रथम दूज मेरे जीवन की।

कहीं-कहीं गतिमय प्रतीकों द्वारा अभिव्यक्ति को विशेष प्रभावशाली बना दिया गया है और निम्नलिखित अवतरण में प्यार को निष्ठुर कहना, कोटि दीपों का जलना तथा विष ही छोड़ देना आदि प्रयोग गतिशीलता के कारण विशेष आकर्षक हो गये हैं—

प्यार बड़ा निष्ठुर था मेरा
कोटि दीप जलते थे मन में
कितने मरु तपते यौवन में
रस बरसानेवाले आकर
विष ही छोड़ गये जीवन में

इसी प्रकार व्यक्तिगत निराशा को कवि ने अत्यन्त रमणीय प्रतीकों द्वारा व्यक्त किया है और इन पंक्तियों में मधुर मिलन के लिए प्यार के संगीत का प्रतीक, मन के उल्लास के लिए मन की कविता का प्रतीक, हृदय

के लिए वंशी का प्रतीक तथा अभिव्यक्ति के कुण्ठित हो जाने के लिए स्वर पर पीत सांझ के उतरने का प्रतीक आदि का प्रयोग कवि की सूक्ष्म पर्यवेक्षण शक्ति का परिचायक है—

बीत गया संगीत प्यार का
रूठ गई कविता भी मन की
वंशी में अब नींद भरी है
स्वर पर पीत सांझ उतरी है

प्रयोगवादी कविता में सैद्धान्तिक प्रतीकों की अभिव्यक्ति भी हुई है और इस प्रकार के प्रतीकों के अन्तर्गत राजनैतिक, दार्शनिक एवं वैज्ञानिक प्रतीक आते हैं। इनमें से वैज्ञानिक प्रतीकों के उदाहरण ही माथुर जी की कृतियों में अधिक मिलते हैं; जैसे—

एटम और उदजन बम हैं नभगामी महलों के कर में
चाह रहे जो सृष्टि धरा को केवल हिरोशिमा कर देना

और भी—

चढ़ चले जीतने सिंधु भयंकर स्टीमर
बारूद और गोलों के काले पहाड़

काव्य कृतियों में पाये जानेवाले प्रतीकों के अतिरिक्त मनोविज्ञान के बढ़ते हुए प्रभाव के फलस्वरूप आजकल नये काव्य में मनोवैज्ञानिक प्रतीकों को भी उत्साहपूर्वक अपनाया जा रहा है। इस प्रकार माथुर जी की रचनाओं में भी कहीं-कहीं मनोवैज्ञानिक प्रतीक प्रयुक्त हुए हैं और इन पंक्तियों में आकर्षक मनोवैज्ञानिक प्रतीकों की सफल संयोजना दर्शनीय है—

पहले इस कूड़े करकट से
मन में झुँझलाहट होती थी
आज वही बच्चों का कूड़ा याद आ रहा।

उक्त विवेचन से यहाँ यह स्पष्ट हो जाता है कि माथुर जी की काव्य कृतियों में सभी प्रकार के प्रतीकों की सफल योजना हुई है और उनकी यह प्रतीकात्मकता कहीं भी दुरूह नहीं जान पड़ती।

माथुर जी की कविता में अप्रस्तुत योजना तथा बिम्ब विधान

नव्य अलंकरण—यद्यपि प्रयोगवादी कवियों ने प्राचीन परिपाटी के प्रति अपना विरोधी दृष्टिकोण ही प्रस्तुत किया है पर अप्रस्तुत योजना एवं अलंकरण की प्रवृत्ति से प्रयोगवादी काव्यधारा रहित नहीं है वल्कि सत्य तो यह है कि इस काव्यधारा को शैलीगतवाद ही कहा जाता है। अतएव प्रयोग-वादी कवियों में अलंकरण की प्रवृत्ति बहुत अधिक मात्रा में है और प्रयोगवादी के प्रवर्तन के समय नवीन उपमानों के प्रयोग के लिए बहुत जोर दिया गया। स्वयं अज्ञेय ने अपनी अभिव्यक्ति को युगीन भावनाओं के अनुकूल बनाने के लिए नये-नये उपमानों का प्रयोग किया है और माथुर जी की कविता में विचारों की पृथुलता होते हुए भी नवीन उपमानों का प्रयोग हुआ है लेकिन कहीं भी चमत्कार उत्पन्न करनेवाले उपमानों का जानबूझकर प्रयोग नहीं किया गया।

वास्तव में उपमान जितनी आवश्यक है उतनी ही कवि माथुर की कृतियों में प्रयुक्त हुई है और 'आँखों के नीले उपवन', 'आँसू सागर', 'अलस चाँदनी, सूनी पलकें, भोली सी नत चितवन ग्राम बालिका अल्हड़पन, पूजन के चन्दन, भूले भटके याद, खोई खोई आँखें, मोम सा घुलता जीवन, स्वर डोरी के पक्ष से, खोई खोई चाल, जीवन की भट्टी, युगवंदिनी हवाएं आदि सचित्र उपमान कवि माथुर की कल्पना से स्वतः प्रसून हुए हैं। हम यहाँ यह उल्लेख कर देना भी उचित समझते हैं कि सन् १९३८ में ही कवि माथुर को नवीन उपमानों के प्रयोग में आशातीत सफलता प्राप्त हो चुकी थी। यहाँ उनके प्रथम काव्य संग्रह 'मंजीर' की कुछ पंक्तियाँ उद्धृत हैं—

अब तो तुम्हारी सुधि
मुझको हुई है हिमालय की लकीर सी
उस दिन की बात जब
उछले थे धीमे ही
चलने से रेती में
चंचल चुपचाप चरण
मिट ही चुके हैं वे बिखरे निशान।

सामान्यतया काव्यशास्त्र के अनुसार उपमान प्रयोग के निम्नलिखित चार प्रकार के हो सकते हैं—१. मूर्त के साथ मूर्त, २. मूर्त के साथ अमूर्त, ३. अमूर्त के साथ अमूर्त और ४. अमूर्त के साथ मूर्त। विचारपूर्वक देखा जाय तो माथुर जी की कविता में सादृश्य के उक्त चारों प्रकार प्रयुक्त हुए हैं और मूर्त के लिए प्रयुक्त उपमानों का एक उदाहरण निम्नलिखित है—

वहीं हरेक शनीचर के दिन
हाट लगी रहती है
भूतकाल की भटकी हुई आत्मा जैसे।

इसी प्रकार अमूर्त के लिए प्रयुक्त अमूर्त उपमानों का यह उदारण दर्शनीन है—

जिसकी सुधि आते ही पड़ती
ऐसी ठंडक इन प्रानों पर
ज्यों सुबह ओस गीले खेतों आती
मीठी हरियाली खुशबू मन्द हवाओं में।

कहीं-कहीं अमूर्त के लिए मूर्त उपमानों का यह उदाहरण दर्शनीय है—

टूटती वाणी अकेली
ज्यों अकेली लहर आकर
टूट जाती पत्थरों पर।

हम यह मानते हैं कि सादृश्य विधान का यह ढंग शास्त्रीय ही है पर उक्त उदाहरणों में प्रयुक्त सभी उपमाओं में जो नवीनता है उससे स्पष्ट है कि माथुर जी ने कवि परम्परा से कितनी दूर हटकर रचना की है। इसी प्रकार उन्होंने प्रकृति, पुराण, विज्ञान और जीवन के सामान्य क्रियाकलापों से भी उपमान ग्रहण किए हैं तथा पौराणिक उपमानों का सुन्दर प्रयोग उनकी 'खत' नामक कविता में हुआ है, जैसे—

वही है हंस
दमयन्ती मिलन को पास लाने का
उनींदे नयन में अनिरुद्धमय
सपना उषा का है

कमल की पंखुरी पर लिखा

गीत शकुन्तला का है

कवि माथुर ने अपनी अभिव्यक्ति चित्र रूप में प्रस्तुत करने के लिए अनेक सुष्ठ प्रयोग किये हैं और कहीं-कहीं सहज उपकरणों की सार्थक चित्रात्मक अभिव्यक्ति में प्रयोग या नयी कविता के कलेवर को एक वैशिष्ठ्य प्रदान किया है। उदाहरणार्थ—

दूर उधर मेंड़ किनारे

कुछ ऊँचे पर

चौड़े महानीम के नीचे

लगी हुई गैस की बत्ती

लोहे के काले खम्भे पर

जिसका लम्बा होकर पड़ता गरम उजेला

अंधकार में पुच्छ तारे जैसा लगता।

माथुर जी ने मिलन के सुखद क्षणों की मधुर स्मृति को भी चित्र के रूप में प्रस्तुत किया है और इसके फलस्वरूप पाठक को अधिक कल्पना का कष्ट नहीं करना पड़ता और वर्ण्य विषय अधिक सुलझे रूप में उसके समक्ष प्रस्तुत होता है—

आज तेरा भोलापन चूम

हुई चूनर भी अल्हड़ प्राण

हुए अनजान अचानक ही

कुसुम से मसले बिखरे साज।

कहीं-कहीं उदासी को भी चित्रात्मक बनाकर अंकित किया गया है और इस प्रकार के प्रसंगों में कवि केवल वातावरण की मलिनता को ही अंकित कर देता है तथा पाठक स्वतः ही समझ जाता है कि कवि के चित्रण का अभिप्राय क्या है; उदाहरणार्थ—

रात हुई पंछी घर आए

पथ के सारे स्वर सकुचाए

म्लान दिया बत्ती की बेला
थके प्रवासी की आँखों में
आँसू आ आकर कुम्हलाए ।

इसी प्रकार वातावरण की सजीवता स्पष्ट करने के लिए भी नवीन उपमानों का प्रयोग निम्नलिखित पंक्तियों में कवि ने नूतन उपमानों की सहायता से सूनी आधी रात का अत्यन्त सटीक चित्र अंकित किया है—

सूनी आधी रात
चाँद कटोरे की सिकुड़ी कोरों से
मंद चाँदनी पीता लम्बा कुहरा
सिमट लिपट कर

इन पंक्तियों में कवि ने चाँद के कटोरे की सिकुड़ी कोरों से लम्बे कुहरे का सिमट लिपट कर मंद चाँदनी के पीने का सुन्दर चित्र अंकित किया है। इस प्रकार हम यहाँ यह कह सकते हैं कि कवि माथुर की अप्रस्तुत योजना निस्संदेह प्रशंसनीय है।

बिम्ब चित्रण—साहित्य में बिम्ब से अभिप्राय है कलाकार की उस क्षमता से जिसके सहारे वह विगत घटनाओं और विषय वस्तु का रंग, ध्वनि, गति, आकार-प्रकार सहित देश-काल परिस्थितियों को ध्यान में रख शब्द चित्रों में वर्णित कर देता है तथा यह शब्द चित्र ठीक उसी प्रकार का होता है जैसाकि उस घटना या वस्तु का स्वरूप था। इस प्रकार 'बिम्ब चित्रण शब्दों में रूप खड़ा करना मात्र न होकर पाठक के विचार और मनोवेगों को उद्वेलित करने वाली कलापूर्ण क्रिया है।' वस्तुतः मनुष्य स्वभावतः ही घटना और वस्तु को बिम्ब रूप में ग्रहण करता है और फिर रूपक, बिम्ब एवं प्रतीक के माध्यम से अपने आपको अभिव्यक्त करता है अतएव बिम्ब कविता का महत्वपूर्ण तत्व सिद्ध होता है।

वास्तव में प्रयोगवादी काव्यधारा में बिम्बों का प्रयोग अत्यंत व्यापक ढंग पर हुआ है और बिम्बविधान की दृष्टि से उसे पूर्ण सम्पन्न कहा जाता है। सत्य तो यह है कि प्रयोगवादी कवियों ने बिम्ब के क्षेत्र में अत्यंत सूक्ष्म एवं मौलिक प्रयोग किये हैं और अन्य प्रयोगवादी कवियों के सदृश्य

श्री गिरिजाकुमार माथुर की कृतियों में भी बिम्बों का प्रचुर मात्रा में प्रयोग हुआ है। डा० नगेन्द्र के शब्दों में 'गिरिजाकुमार के अंतःसंस्कार छायावाद के सूक्ष्म कोमल, शत शत रंगोज्जवल बिम्बों से बसे हुए थे—उनकी काव्य चेतना का पोषण एक ओर प्रसाद, पंत, निराला, महादेवी के काव्य वैभव से और दूसरी ओर अंग्रेजी रोमानी कवियों की चित्रमय विभूतियों से हुआ था। कवि ने इस वैभव विलास का पूर्ण उपयोग करते हुए उसे नवीन उपकरणों से समृद्ध किया। छायावाद के कवियों पर, विशेषतः छायावाद की अंतिम प्रतिनिधि महादेवी पर, नये कवियों का यह आरोप था कि उनका क्षेत्र अत्यंत सीमित है और उपमान तथा प्रतीक रूढ़प्राय होने से उनकी बिम्ब योजना में वैचित्र्य नहीं रहा। प्रारम्भ में गिरिजाकुमार के उपमान और बिम्ब, शृंगार की प्रधानता के कारण छायावाद और रीतिकाव्य के उपमानों और बिम्बों से प्रायः अभिन्न थे। उनमें नवीन स्पर्श तो थे किन्तु पुनरावृत्ति के दोष से वे मुक्त नहीं थे। धीरे-धीरे उनका क्षेत्र विस्तार हुआ और नई सभ्यता के आकर्षक उपमानों का सुरुचि के साथ समावेश किया गया—परम्परागत उपमान और प्रतीक नये उपमान-प्रतीकों के साथ मिलकर नूतन बिम्बों का।' इस प्रकार माथुर जी की बिम्ब योजना निर्विवाद रूप से सराहनीय है और हम यहाँ उनकी काव्य कृतियों से समुचित उदाहरण देकर उनके बिम्ब विधान का कुछ विस्तृत परिचय देना आवश्यक समझते हैं।

सामान्यतया बिम्बों का वर्गीकरण कई दृष्टियों से किया जाता है और बिम्ब विधान को दो से लेकर सात रूपों में विभाजित किया जा सकता है। इस प्रकार कुछ विचारक बिम्ब विधान के भाव बिम्ब और इन्द्रिय बिम्ब नामक दो रूप ही मानते हैं पर कुछ समीक्षक बिम्ब विधान का निम्नलिखित वर्गीकरण करते है—१. प्रकृति बिम्ब, २. पौराणिक बिम्ब, ३. कलात्मक बिम्ब, ४. सामान्य जीवन के कार्य कलाप—बिम्ब विधान, सान्द्र बिम्ब, और ६. विकृत बिम्ब। हमारी दृष्टि में बिम्ब के निम्नलिखित प्रमुख प्रकार मानना ही युक्ति संगत होगा—१. दृश्य बिम्ब, २. श्रव्य बिम्ब, ३. स्पर्श बिम्ब, ४. आस्वाद्य बिम्ब और ५. गंध बिम्ब पर कभी-कभी कवि विशेष की कृतियों में इन पाँचों के अतिरिक्त कुछ अन्य बिम्बों की योजना स्वाभाविक ही हो

जाती है। इसमें कोई संदेह नहीं कि माथुर जी की कृतियों में बिम्ब के उक्त सभी प्रकारों की उत्कृष्ट योजना हुई है और हमारा यह कथन निम्नलिखित उदाहरणों से सिद्ध भी हो जाता है।

वस्तुत: काव्य में दृश्य बिम्ब की संख्या ही सर्वाधिक होती है और अन्य बिम्बों को भी हम इसके अंतर्गत समाविष्ट कर सकते हैं क्योंकि बिम्ब चाहे किसी भी प्रकार के हों पर उनका ग्रहण प्रत्यक्ष या मानस चक्षु द्वारा ही संभव होता है। इतना होते हुए भी स्थूल रूप से उन्हीं बिम्बों को दृश्य बिम्ब कहा जाता है जो आँखों द्वारा दिखाई देते हैं और माथुर जी की काव्य कृतियों में दृश्य बिम्ब के कई सुन्दर उदाहरण मिलते हैं ; जैसे—

ये हवा धूप मिली
लहर सी आके लिपट जाती है
कभी हल्के से उड़ा देती बाल
कभी छत पर बैठी ललनाओं के
सोंधे तन गंध भरे आँचल को
गोरे कंधे से उड़ा देती है
और उड़ जाते हैं सूखते कपड़े
ऊँची सीमेंट की मुंडेरों से।

इन पंक्तियों में कवि ने धूप के घान सदृश्य सूक्ष्य एवं आकारहीन पदार्थ को मनुष्य जैसा आचरण करते अंकित किया है और निम्नलिखित अवतरण को भी सुन्दर दृश्य बिम्ब का उदाहरण कहा सकता है—

कंटकित बेरी करौंदे, महकते हैं झाब झोरे
सुन्न हैं सागौन वन के, कान जैसे पात चौड़े
ढूह, टीले, टोरियों पर धूप सूखी घास भूरी
हाड़ टूटे देह कुबड़ी चुप पड़ी है गैल बूढ़ी

इसी प्रकार कवि ने कहीं कहीं जुगुप्सा-प्रधान चित्र अंकित किये हैं पर उनमें अनूठी रमणीयता है। उदाहरणार्थ ; निम्नलिखित पंक्तियों में कवि ने काले जल पर चाँद के प्रतिबिम्ब एवं वन चमेली को जड़ों से काले नाग का

कस कर लिपट जाना नामक दृश्यों को अंकित कर अपने कथ्य को पाठकों के समक्ष अत्यंत ही सशक्त रूप में प्रस्तुत किया है—

पूर्व से उठ चाँद आधा
स्याह जल में चमचमाता
वन चमेली की जड़ों से
नाग कसकर लिपट जाता

वस्तुतः श्रव्य बिम्ब का निर्माण ध्वनि परक शब्द चित्र द्वारा होता है और इसे नाद की बिम्ब भी कहा जाता है। कवि माथुर की कृतियों में इस बिम्ब का प्रयोग भी प्रचुर मात्रा में हुआ है और इन पंक्तियों में वंशी, मृदंग, कोयल आदि के उल्लेख मात्र से श्रव्य बिम्ब का विधान माना गया है पर वास्तव में यहाँ सम्पूर्ण वातावरण ही नादमय जान पड़ता है—

वंशी में अब नींद भरी है,
स्वर पर पीत साझ उतरी है
बुझती जाती गूंज आखिरी—
इस उदास वन पथ के ऊपर
पतझर की छाया गहरी है।

सामान्यतया स्पर्श बिम्ब का निर्माण उन भाव खंडों द्वारा होता है जिनके द्वारा कवि स्पर्श इन्द्रियों को उत्तेजित करने में समर्थ शब्द चित्रों का निर्माण करने में सफल होता है। निम्नलिखित अवतरण में उजली बाँहों सी दीवारें, नहीं समेट पा रहीं मुझको और खुली हुई छाती आदि प्रयोग स्पर्श इन्द्रियों को प्रत्यक्षः उत्तेजित करते हैं—

और याद यह आता संध्या की बेला में
यह एकांत मकान
और उजली बाहों सी यह दीवारें
नहीं समेट पा रहीं मुझको
और न दिन भर की थकान को मिटा रही है
निस्संकोच लिटाकर अपनी
छत सी खुली हुई छाती पर।

वस्तुत: आस्वाद्य बिम्ब की संरचना किसी भी इन्द्रिय द्वारा उस इन्द्रिय से सम्बन्धित संवेदना को उत्पन्न कर की जाती है। जैसे—

कैसे पीकर खाली होगी,
सदा भरी आँसू की प्याली।

इसी प्रकार कहीं-कहीं अंग विशेष के उल्लेख द्वारा भी आस्वाद्य बिम्ब की सृष्टि हुई है और पंक्तियों में 'अधर' शब्द द्वारा अधरपन का चित्र उभरता है—

अधर पर धर क्या सोई रात,
अजाने ही मेंहदी के हाथ।

सामान्यतया गंध बिम्ब की उपलब्धि अत्यंत सीमित मात्रा में होती है पर कवि माथुर की कृतियों में गंध बिम्ब के कई सुन्दर उदाहरण मिलते हैं और यह चित्र गंध बिम्ब का अच्छा उदाहरण सामने रखता है—

जिसकी सुधि आते ही पड़ती
ऐसी ठडक इन प्रानों में
ज्यों सुबह ओस गीले खेतों से आती है
मीठी हरियाली खुशबू मंद हवाओं में।

इन बिम्बों के अतिरिक्त अन्य कई प्रकार के बिम्ब भी कवि माथुर की कृतियों में पृथुल परिमाण में उपलब्ध होते हैं और वस्तु बिम्ब के तो कई सुन्दर उदाहरण दीख पड़ते हैं ; जैसे—

बीच पेड़ों की कटन में, हैं पड़े दो चार छप्पर
हांड़ियाँ, मचिया, कठौते, लट्ठ, गूदड़, बैल, बक्खर
राख, गोबर, चरी, आँगन, लेज, रस्सी, हल, कुल्हाड़ी
सूत की मोटी फताई, चर्का हंसिया और गाड़ी
धुँआ कंडों का सुलगता भौंकता कुत्ता शिकारी
है यहाँ की जिन्दगी पर शाप नल का स्याह भारी।

उपर्युक्त चित्र में कवि ने समस्त वातावरण को अत्यंत तटस्थ भाव से रूपायित करने का प्रयत्न किया है और इसे प्रतिचित्रात्मक वस्तु बिम्ब का सुन्दर उदाहरण कहा जा सकता है। वस्तु बिम्ब का दूसरा रूप व्यापार

व्यंजक होता है और इसमें कवि गत्यात्मक चित्र अंकित करता है। निम्न-लिखित पंक्तियों में क्लर्क जीवन की चिन्ता और अभावों का बिम्ब कितनी सहजता से अंकित हुआ है—

घंटियाँ बज रही हैं रिक्शों की
बीसियों साइकिलों की पांतें
कैरियर, टोकरी या हैंडिल में
कुछ के खाली कटोरदान बंधे
कुछ में हैं फाइलें हर छिन्न भूखी
जो न कभी खत्म हुई दफ्तर में

इसी प्रकार कवि माथुर की रचनाओं में भाव बिम्ब के भी कुछ सुन्दर उदाहरण मिलते हैं और इस प्रकार के बिम्बों में चित्र का दृश्य पक्ष उतना स्पष्ट नहीं होता जितना भाव पक्ष। उदाहरणार्थ—

ढल गई शाम
अब रात साँवली सूनी सूनी उठ आई
दीपक की लौ पर काजल की ज्यों रेखाएँ

माथुर जी की कविता में अलंकृत बिम्बों की योजना हुई है और इन अलंकृत बिम्बों का एकमात्र आधार कलात्मक सौंदर्य ही है तथा इनमें कवि की दूरान्वयी कल्पना के दर्शन होते हैं। उदाहरणार्थ; इन पक्तियों में उपमा की अत्याधुनिकता का चमत्कार दर्शनीय है—

चाँद पूरा साफ
आर्ट पेपर ज्यों कटा हो गोल।

इसी प्रकार कहीं-कहीं पौराणिक बिम्बों के माध्यम से कवि ने जीवन की संघर्षमयता और विभीषिका को अभिव्यक्ति प्रदान की है। जैसे—

जब जगत को चाहिए फुलवारियाँ
हो रही तब युद्ध की तैयारियाँ
फिर धरा सीता सताई जा रही
फिर असुर संस्कृति समाई जा रही।

माथुर जी की कविता में विवृत बिम्ब के भी कुछ उत्कृष्ट उदाहरण मिलते हैं और इनमें एक छोटे से तथ्य या भाव को कल्पना द्वारा अत्यंत व्यापक ढंग पर अंकित किया गया है। उदाहरणार्थ ; इन पंक्तियों में धूप के आगमन को कवि ने बिम्ब रूप में चित्रित किया है—

उतरती आती छतों से
सर्दियों की धूप
उजले ऊन की मृदु शाल पहिने
वह मुंडेरों पर ठहरकर
झाँकती हैं झंझरियों से
रात के धोये उन आगनों में
और अलसाये हुए
कम्बल, लिहाफों, बिस्तरों पर
जो उठाये जा रहे हैं

× × ×

धुले मुख सी धूप यह गृहिणी सरीखी
मंद पग घर आ गई है
चाय की लघु टेबिलों पर
कभी बनती केतली की
प्यालियों की भाप मीठी
कभी बनती स्वयं ही
रसधार ताजे दूध की।

उक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि कवि माथुर का काव्य बिम्ब विधान की दृष्टि से निस्संदेह पर्याप्त समृद्ध है और समीक्षक उचित ही कहते हैं 'माथुर जी की रचनाओं में बिम्ब विधान भावना सिक्त है जिसमें एक विशिष्ट प्रकार का औदार्य संजोया गया लगता है।'

कवि माथुर की छन्द योजना

विचारपूर्वक देखा जाय तो 'काव्य के किसी भी अंग के प्रति प्रयोगवादी कवि सर्वाधिक विद्रोही रहा है तो वह है छन्द। इस युग के अधिकांश

कवियों ने पूर्व प्रचलित छन्द विधान को एकदम अस्वीकार कर अतुकान्त और मुक्त छन्द में रचना की है। स्वयं श्री गिरिजाकुमार माथुर ने 'तार सप्तक' में अपने वक्तव्य में कहा है—कविता मैं मुक्त ही पसंद करता हूँ। मुक्त छन्द में अधिकतर मैंने विरामान्त (एण्ड स्टॉप) पंक्तियाँ नहीं रखीं। धारावाहिक (रन ऑन) ही रखी हैं। आगत पंक्ति के आरम्भ में विगत पंक्ति की ध्वनि सम संगीत उत्पन्न करने के लिए वर्तमान रहने दी है। क्योंकि बिना इसके ध्वनि सामंजस्य (सिम्पैथेटिक वाइब्रेशन) उत्पन्न नहीं हो पाता। इसी कारण मैं मुक्त छंद में संगीत प्रधान गीत संभव कर सका हूँ जिन्हें गाते समय तुक की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती।····मुक्त छंद का मैंने सम्पूर्ण विधान रचा है। मुक्त छन्द को दो भागों में विभक्त किया है, वर्णिक और मात्रिक तथा इनके रूपान्तर। वर्णिक में मैं कवित्त के विरामों को उनके रूपांतर सहित लेकर चला हूँ। यह आवश्यक नहीं रखा कि कवित्त के पूर्ण विरामों पर ही पंक्ति समाप्त हो, किन्तु अर्ध विराम भी शुद्ध माने हैं, जब तब वे अनुच्चरित (अन् ऐक्सेंटेड) वर्ण पर समाप्त न होकर उच्चरित पर समाप्त होते हों। इस भांति कवित्त के विरामों को लेकर कितने ही प्रकार की मुक्त छंद पंक्तियाँ निर्मित की हैं। सवैये के विरामों पर स्थित एक नये प्रकार का बहुत संगीतमय मुक्त छंद लिखा है।'····एक कविता में एक ही प्रकार का मुक्त छंद प्रयुक्त होना आवश्यक समझता हूँ। यदि उच्चरित वर्णविन्यास (सिलेबल) पंक्ति आरम्भ हुई हो तो समस्त पंक्तियाँ उच्चरित से ही प्रारम्भ होनी चाहिए। विरामान्त पंक्तियों में यह नियम अनिवार्य दिया। धारावाहिनी पंक्तियों में भी प्रथम पंक्ति का अर्ध विराम द्वितीय पंक्ति में लेने का नियम रखा है। पंक्तियों के विरामों की ध्वनि मात्राएँ पूर्णतः सम एवं शुद्ध होना अत्यंत आवश्यक समझता हूँ। इन नियमों के विरुद्ध लिखा गया मुक्त छन्द अशुद्ध मानता हूँ।

ध्वनि विज्ञान में मेरे प्रयोग मुख्यतः स्वर ध्वनियों के हैं। व्यंजन ध्वनियों से उत्पादित संगीत को मैं कविता में संगीत नहीं मानता प्रत्युत रीतिकालीन रूढ़ि समझता हूँ।····शब्द की आत्मा स्वर ध्वनि है, इसी कारण उस पर अवलंबित संगीत आंतरिक, गंभीर और स्थायी है। वह आकाश तत्त्व

का संगीत है। वातावरण निर्माण में मैंने इसी की सबसे अधिक सहायता ली है। मुक्त छन्द के अंतः संगीत में इन्हीं ध्वनियों की गूंजें बुनी हैं। इसी नियम को लेकर मैंने स्वर ध्वनियों का मूल्यांकन किया है। मैंने छहों स्वरों के सम्पूर्ण प्रभावों को लेकर उनका निश्चित रूप एवं आकार निर्धारित किया है। आ ध्वनि का रूप है, विस्तार 'इ' ध्वनि का रूप है आनत, ऊँचाई, ऊ ध्वनि में दूरी, ए ध्वनि में ऊर्ध्वगति, ओ ध्वनि में वस्तु का व्योम तथा भीम प्रवाह, और ऊँ में गहराई और गांभीर्य है। इस मूल्यांकन के बल पर मैंने विभिन्न वातावरण निर्माण किये हैं। जहाँ जिस वस्तु का इंगित करना होता है, वहाँ उस ध्वनि का उतना ही प्रयोग है।····प्रत्येक स्वर के स्वरूप पर कविताएँ लिखी हैं। क्योंकि मेरा विश्वास है कि स्वर ध्वनियाँ आकाश तत्त्व के विभिन्न रूपान्तर हैं।'

इससे स्पष्ट हो जाता है कि माथुरजी ने मुख्यतया मुक्त छन्दों के प्रयोग में ही रुचि ली है पर उन्होंने मुक्त छन्द के अतिरिक्त लय को काव्य का आंतरिक तत्त्व भी कहा है 'विकसित लय पर ही छन्द हैं पर मात्र लय पर से भी काम चल सकता है, अथवा वह एक नये छन्द का निर्माण बिन्दु बन सकता है।' इस प्रकार कवि माथुर को नवीन छन्दों के निर्माण का श्रेय अवश्य दिया जा सकता है और डॉ० कैलाश वाजपेयी ने कहा भी है 'गिरिजाकुमार माथुर की रचनाओं में आवश्यक कुछ प्रयोग मिलते हैं····छन्द सम्बन्धी नवीन प्रयोगों में उनका 'आज है केसर रंग रँगे बन' सवैये को तोड़कर बनाये गये नवीन छंद का उदाहरण सामने रखता है।' यहाँ इस कविता की कुछ पंक्तियाँ उदाहरणार्थ उद्धृत की जा रही हैं—

आज हैं केसर रंग रँगे बन,
रंजित शाम भी फागुन की खिली पीली कली सी,
केसर के वसनों में छिपा तन,
सोने की छाँह सा,
बोलती आँखों में
पहिले वसंत के फूल का रंग है।
गोरे कपोलों पै हौले से आ जाती,

पहिले ही पहिले के

रंगीन चुम्बन की सी ललाई।

विचारपूर्वक देखा जाय तो माथुरजी की काव्य कृतियों में भावाशैली के सदृश्य छन्द योजना में भी वैविध्यता है और कवि माथुर की छन्द साधना में विविध मोड़ भी स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होते हैं। वास्तव में माथुर जी की प्रवृत्ति बाल्यकाल से ही लयात्मक रही है और कहा जाता है कि बचपन में अर्धनिद्रावस्था में जब उन्हें प्यास लगती थी तब वे पानी की इच्छा प्रकट करने के साथ-साथ अपनी अभिलाषा को लयात्मक ढंग से इस प्रकार दोहराया करते थे— अरे लबालब

अरे तलातल

अरे तलातल

अरे लबालब

माथुरजी के जीवनवृत्त का अनुशीलन करने पर स्पष्ट हो जाता है कि नौ वर्ष की आयु में ही उन्होंने ब्रजभाषा की बहुत सी कविताएँ कंठस्थ कर ली थीं और हितोपदेश के संस्कृत श्लोकों के नादविधान ने भी उन्हें प्रभावित किया था। इसी प्रकार बहुत ही छोटी अवस्था से उन्हें अँग्रेजी के साथ उर्दू भी पढ़ाई गयी। सामान्यतया माथुरजी ने प्रारंभ में ब्रजभाषा में ही काव्य रचना प्रारंभ की और समस्या पूर्त्तियों के लेखन से उनकी काव्ययात्रा का आरंभ भी हुआ। इस प्रकार कवि माथुर ने प्रारंभ में घनाक्षरी (कवित्त) छंद को अपनाया और उनका एक प्रारंभिक कवित्त इस प्रकार है—

शोभा मुख चन्द्र की अनोखी सप्रभा ललाम,

ऊषा उस छवि पर निज को थी वारती।

रूप रस पान करने को घुँघरारि लट,

मधुप समान शुभ साज काज सारती।

सुन्दर सिन्दूर भराते जवान मुख देख,

मति सकुचाई अरु मौन हुई भारती।

कोटिन कलाधर की कला बलिहारी जात,

गिरिजाकुमार की उतारैं सब आरती।

ब्रजभाषा के प्रति कवि माथुर का यह प्रेम अधिक दिनों तक नहीं रहा और वह जब कालेज में अध्ययन कर रहे थे तब पाश्चात्य साहित्यकारों के साथ-साथ छायावाद से भी परिचित हुए तथा उन्होंने मैथिलीशरण गुप्त, प्रसाद, निराला, पंत एवं महादेवी की कविताओं का अध्ययन किया। इस बीच उन्होंने छायावादी शैली में कई गीत लिखे पर जब एक कवि सम्मेलन में माखनलाल जी ने उनसे कहा 'यदि तुम इस गीत के आगे अपना नाम न लिख-कर महादेवीजी का नाम लिख दो तो कोई पहिचान नहीं सकता' तब उन्हें इस प्रशंसा से हर्ष की अपेक्षा विषाद ही अधिक हुआ। इस प्रकार 'घर लौट-कर उन्होंने अपने सारे गीत फाड़ डाले और संकल्प किया कि जब तक वह अपनी मौलिक राह नहीं खोज लेंगे, कोई कविता नहीं लिखेंगे।'

अपने उक्त संकल्प का माथुर जी ने आजीवन पालन किया और गीत रचना तो उन्होंने बाद में भी की पर अब वह प्राचीन परम्परा का मोह छोड़-कर अपने लिए नवीन पथ का निर्माण करने के लिए जुट गये। अतएव सन् १९३७ स ही उनके नवीन प्रयोग प्रारंभ हो गये और उनकी कविता में नवीन शिल्प के दर्शन होने लगे तथा कवि माथुर के सर्वप्रथम काव्यसंग्रह 'मंजीर' में ही हमें उनकी विविधमुखी छन्द साधना के दर्शन होते हैं। इस प्रकार 'मंजीर' में हमें एक ओर कुछ सुमधुर एवं सरस गीत मिलते हैं जिनमें नवीन प्रयोगों की योजना है; जैसे—

मिटी दूर की आशा भी अब,
आह, कहूँ किससे मैं मन की
आँखों के नीले उपवन में
आँसू सागर के लघु तट पर
आ जाती तुम प्राण सदा ही
चल मेरे सपनों के पथ पर
रानी, तुम बनकर आई थीं
प्रथम दूज मेरे जीवन की

दूसरी ओर हमें मुक्त छंद के भी कुछ उल्लेखनीय उदाहरण दीख पड़ते हैं जिनसे यह सिद्ध हो जाता है कि कवि माथुर को अपने कवि जीवन के प्रारंभ

में ही मुक्त छंदों के सृजन में पूर्ण सफलता प्राप्त हुई थी। 'मंजीर' से मुक्त छन्द का एक लघु उदाहरण यहाँ उद्धृत किया जा रहा है—

> पश्चिम के गोधूल गगन में रण की काली आँधी आई
> जिसकी लम्बी छाया
> अपने निर्जल सागर के तट पर आ पहुँची
> क्या होगा उनका जिन पर था प्यार हमारा
> क्या होगा उनका जिनको पूजा को—
> अपनी विवश गरीबी में भी सब कुछ वारा
> यदि आयेंगे अत्याचारी
> सुन्दर-सुन्दर नगर ग्राम को
> खँडहर औ वीरान बनाने
> क्या होगा इन आँखों में रहने वालों का
> क्या होगा इन सपनों में बसने वालों का
> अपनी कमजोरी की परवशता में
> तरस तरस कर बेबस रह जाने वालों का।

'मंजीर' के प्रकाशन के उपरान्त कवि माथुर की काव्यसाधना में हमें दो धाराएँ एक साथ प्रवाहित होती जान पड़ती हैं और एक ओर तो माथुर जी ने गीति काव्य को अपनाया है तथा दूसरी ओर मुक्त छंद में अनेक प्रसिद्ध कविताएँ रची हैं। इस प्रकार अपने दूसरे काव्य संग्रह 'नाश और निर्माण' में कवि माथुर ने कई सुन्दर गीत संकलित किये हैं और धूप के धान, शिला पंख चमकीले तथा जो बँध नहीं सका में गीतों की संख्या उत्तरोत्तर कम होते हुए भी छायावादोत्तर गीतिकारों में उनका उल्लेखनीय स्थान माना जाता है। डॉ॰ नगेन्द्र ने कवि माथुर के गीति काव्य की प्रशंसा करते हुए कहा भी है 'वे हिन्दी के अत्यन्त मधुर गीतकार हैं।····गिरिजाकुमार के गीतों में रूप और आभा का समन्वय पहली बार मिला।····गिरिजाकुमार छायावादोत्तर गीतकारों में अपने रुचि परिष्कार तथा कल्पना की समृद्धि के कारण विशेष स्थान के अधिकारी बने और उन्होंने अर्थ के संगीत के साथ शब्द के संगीत का अपूर्व सामंजस्य कर हिन्दी गीतिकाव्य को निश्चय ही एक नवीन समृद्धि

चाँद हेमंती
हवा बहती कटीली
चाँदनी फैली हुई है
ओस नीली
चाँदनी डूबी हवा सुधि गंध लाती
याद के हिम वक्ष से आँचल उड़ाता
चाँद के जब गोल बीसों आइनों में
मोम की सित मूर्त्ति सी गत आयु आती

वस्तुत: शिल्प सम्बन्धी प्रयोगों की दृष्टि से कवि माथुर की काव्य-कृति 'धूप के धान' विशेष उल्लेखनीय मानी जाती है और इसमें कई नए छन्दों का प्रयोग हुआ है। पर छन्द योजना की दृष्टि से माथुर जी के शेष दोनों काव्यसंग्रह 'शिला के पंख चमकीले' और जो बँध नहीं सका' भी प्रशंसनीय हैं। इनमें से 'शिला पंख चमकीले' में कवि ने पुन: छन्द की दृष्टि से नवीन मोड़ लिया है और हम देखते हैं कि माथुर जी का छन्द विधान अभिव्यक्ति से बिल्कुल एकरूपता रखता है। उदाहरणार्थ, 'शिला पंख चमकीले' की प्रथम कविता 'सूरज का पहिया' का कुछ अंश उद्धृत है—

उम्र रहे झलमल
ज्यों सूरज की तश्तरी
डंठल पर विगत के
उगे भविष्य संदली
आँखों में धूप लाल
छाप उन ओठों की
जिसके तन रोओं में
चंदरिमा की कली।

अपने पाँचवें काव्यसंग्रह जो बँध नहीं सका' में तो कवि माथुर मुक्त छन्द प्रयोग की दृष्टि से कुछ और आगे बढ़े जान पड़ते हैं। उदाहरणार्थ इस कविता संग्रह की 'वर्ष दिन' नामक एक कविता की कुछ पंक्तियाँ दर्शनीय हैं—

ढल गया

लुढ़क गया

एक और वर्ष दिन

पत्थर सा

रंगीन कंचे-सा

स्याही-सा

आँसू की बूंद सा

उक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि श्री गिरिजाकुमार माथुर का छंद विधान निर्विवादरूप से प्रशंसनीय है और इसमें कोई संदेह नहीं कि उनकी मुक्त छन्द योजना संगीतात्मकता से संयोजित होकर उन्हें अन्य एवं नये कवियों से विशिष्ट भूमि पर प्रतिष्ठित करदेती है। इसे कवि माथुर के छन्द विधान की कुछ कम महत्वपूर्ण उपलब्धि न समझना चाहिए और यहाँ यह भी ध्यान में रखना होगा कि प्रयोगवादी काव्यधारा के कटु आलोचकों ने भी माथुर जी के छन्द विधान की भूरि-भूरि प्रशंसा की है।

निष्कर्ष

श्री गिरिजाकुमार माथुर काव्य कृतियों का मूल्यांकन करने के पश्चात् हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि माथुर जी का काव्य कृतित्व निर्विवाद रूप से उन्हें नयी पीढ़ी के रचनाकारों के मध्य, महत्वपूर्ण स्थान प्रदान कर सकने में समर्थ हैं लेकिन समीक्षक उनके सम्बन्ध में पृथक्-पृथक् मत व्यक्त करते हैं। इस प्रकार एक ओर डा० शिवकुमार मिश्र का मत है 'कुल मिलाकर माथुर जी का काव्य उन्हें नयी पीढ़ी के समर्थ कवियों की पंक्ति में बिठा देने को पर्याप्त है। वस्तु और शिल्प के प्रति इतनी संतुलित दृष्टि नये कवियों में कम लोगों ने ही प्रदर्शित की है।' दूसरी ओर श्री विश्वम्भर 'मानव' का कवि माथुर के सम्बन्ध में यही कहना है 'तुलनात्मक दृष्टि से इनकी रचनाओं में वह आज मौलिकता और स्वाभाविकता नही पायी जाती, जो किसी वाद से सम्बद्ध और प्रतिबद्ध कवियों के काव्य

में देखी जा सकती है। ····माथुर अपनी दृष्टि में चाहे कुछ भी हों, पर कुल मिलाकर ये न तो बच्चन और नरेन्द्र शर्मा जैसे गीतिकार हो पाये, न प्रगतिशीलता की चादर तानकर नागार्जुन और मुक्तिबोध जैसी प्राणवान रचनाएँ दे पाए और न प्रगतिवाद के सत्र में प्रवेश पाकर उनकी ऐसी ख्याति ही रही, जैसी अज्ञेय और शमशेरसिंह की।

विचारपूर्वक देखा जाय तो मानव जी का यह दृष्टिकोण एकांगी और दुराग्रहपूर्ण ही जान पड़ता है। सत्य तो यह है कि आज नये कवियों में जो ख्याति माथुर जी को प्राप्त हुई है वह बिरले ही किसी कवि को प्राप्त हुई होगी और सुप्रसिद्ध समीक्षक डा० नगेन्द्र ने तो श्री गिरिजाकुमार माथुर को नयी कविता का निर्माता माना है तथा कई दृष्टियों में उन्हें अज्ञेय और शमशेरबहादुर सिंह से श्रेष्ठ सिद्ध किया है। इस प्रकार हम युवा समीक्षक डा० प्रतापनारायण टंडन के इस कथन से सहमत हैं कि 'तार सप्तक के कवियों में श्री गिरिजाकुमार ही शायद ऐसे ही कवि हैं, जिनकी चित्रात्मक प्रतीक शैली को दूसरे सप्तक में आगे बढ़ाया गया है। यही नहीं, बल्कि दूसरे सप्तक के बाहर के कवियों की पीढ़ी भी उनके शैली शिल्प के प्रयोगों को लेकर आगे बढ़ी है। अन्यथा, अन्य कवियों की शैली और प्रयोग उन्हीं तक सीमित होकर रह गये हैं।